आनंदराम ढेकियाल फूकन (1829-1859) असमिया जन-जीवन के उस संघर्षपूर्ण दौर में हुए, जब ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा असम पर अधिकार के एक दशक बाद उनकी मातृभाषा को सरकारी विद्यालयों और राज्य की अदालतों से किनारे कर उसका स्थान बाङ्ला को दे दिया गया था। स्थानीय भद्र समाज और जनता में से किसी ने भी इसके विरोध में आवाज़ नहीं उठायी। आनंदराम ने असमिया, बाङ्ला और अंग्रेज़ी के अपने अच्छे ज्ञान के कारण इसके भयावह और अपरिहार्य परिणामों को सबके सामने रखा। इनमें से कुछ अमरीकी बैप्टिस्टों ने, जो असम में धर्म प्रचार कर रहे थे, स्थिति की भयंकरता को महसूस किया। वे असमियों के लिए एक आंदोलन चलाने के लिए संगठित हुए लेकिन उनके लक्ष्य की पूर्ति 1873 में 29 वर्षीय फूकन की मृत्यु के चौदह वर्षों के बाद ही हो सकी। इतने विलम्ब से प्राप्त इस सफलता के पीछे भी आनंदराम ही थे जिन्होंने अपनी बहुश्रुत एवं प्रबुद्ध रचनाओं के माध्यम से असमिया भाषा की पुनःप्रतिष्ठा के लिए आवश्यक तर्क एवं तथ्य उपस्थापित किए और इस प्रकार एक स्थानीय भाषा में सुंदर आधुनिक साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

इस लघु विनिबंध में **प्रो. महेश्वर नियोग** ने फूकन के संक्षिप्त किन्तु सार्थक जीवन और असमिया के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान उनके अपराजेय संघर्ष की कथा कही है।

आवरण आकल्पन : सत्यजीत राय
सन्निविष्ट चित्र : श्री चिन्मोहन सहनवीस के सौजन्य से।

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

आनंदराम ढेकियाल फूकन

महेश्वर नियोग

भारतीय साहित्य के निर्माता

आनंदराम ढेकियाल फूकन

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

आनंदराम ढेकियाल फूकन

लेखक
महेश्वर नियोग

अनुवादक
गंगाप्रसाद विमल

साहित्य अकादेमी

Anandaram Dhekiyal Phukan : Hindi translation by Ganga Prasad Vimal of Maheswar Neog's monograph in English. Sahitya Akademi, New Delhi (1991),

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1991

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमण्ड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

29, एलडाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

मूल्य

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

मुद्रक

भारती प्रिण्टर्स

दिल्ली 110 032

एक

आधुनिक असमी भाषा के अग्रणी प्रणेता और पोषक आनंदराम ढेकियाल फूकन का जब 16 जून 1859 को देहान्त हुआ तब वे अपने जीवन की तीसी भी पार नहीं कर पाये थे। यदि बिलकुल सही हिसाब लगाया जाए तो उस समय उनकी अवस्था 29 वर्ष 6 महीने और 29 दिन की थी किन्तु उनके बारे में यह मानना पड़ेगा कि इस छोटी-सी अवधि में उन्होंने अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त कर लिया था। गौर वर्ण का यह युवक वास्तव में एक विशिष्ट व्यक्तित्व का स्वामी था। मुश्किल से साढ़े पाँच फुट क़द के थी ढेकियाल का प्रशस्त ललाट, बड़ी और दृप्त नासा और लाल-पुष्प के समान अरुण अधर थे। निचला होंठ ऊपरी होंठ से थोड़ा ही बड़ा था। उनका चेहरा लम्बोतरा था और गर्दन काफ़ी लम्बी। उनकी क़द-काठी सामान्य थी। उनकी सघन-केश-राशि उनके सारे सिर को ढकते हुए घुँघराले लच्छों में लहराती कन्धों तक आती थी। ऊपरी होंठ के ऊपर मूँछ की हल्की-सी रेखा थी जो ऊपर की ओर पूरी तरह कुंचित नहीं हो पाती थी। कलकत्ता के हिन्दू कॉलिज में छात्र के रूप में प्रवेश लेने के लिए जब वे पहली बार यात्रा कर रहे थे तब उनके बाल आस-पास से तो सँवारे हुए थे लेकिन सिर पर फिर भी छोटा-सा गोलाकार केशगुच्छ था।

वे अपनी वेशभूषा पर विशेष ध्यान देते थे। उन्होंने असमी ढंग से बँधी पगड़ी का रिवाज़ चलाया जिसका प्रचलन आधुनिकों में काफ़ी समय तक रहा। बाद में यह प्रवृत्ति सदा के लिए सहसा समाप्त हो गयी। वे न्यायालय में सिल्क की धोती (भाँगा पाट चूड़िया) कोट (आँगा चोला) छज्जेदार तिकोनिया पगड़ी आदि सभी कुछ वास्तविक असमी शैली में पहनकर जाते थे या फिर कलकत्ते जैसी जगहों में उन दिनों प्रचलित पाजामा, चपकन काबा या मिर्जई कोट और अमामा पगड़ी पहनकर। उनकी असमी शैली की पगड़ी का स्थान कभी-कभी टोपी ले लेती थी किन्तु उनका वेश चाहे जो हो उनके समग्र व्यक्तित्व से एक प्रकार की व्यवस्था, गरिमा और सुरुचिपूर्ण सम्पन्नता का भाव झलकता था।

'भव्य जीवन का एक सघन घण्टा' ऐसा था आनंदराम का जीवन 'एक सम्पूर्ण युग के योग्य किसी नाम के बिना'। असमी भाषा के अतिरिक्त अंग्रेज़ी और बाङ्ला दोनों भाषाओं में सुन्दर और समर्थ रूप से लिखने और इनसे प्रेम करने की अपनी क्षमता को उन्होंने पूर्ण अभिव्यक्ति दी।

यह सच है कि वे कोई महान् साहित्यिक विभूति नहीं थे बल्कि यों कहें कि थे ही नहीं। किन्तु वे मध्य उन्नीसवीं शताब्दी के असमी संसार के महान्तम नहीं तो महान पोषकों में से एक थे। वे ब्रिटिश असम के न्यायालयों और स्कूलों में असमी भाषा को उसका उचित स्थान दिलाने में सफल नहीं हो सके किन्तु वे ही थे जिन्होंने इस माँग के लिए सबसे समर्थ आवाज़ उठायी। उनके असामयिक निधन के उपरान्त प्रशान्त महासागर पार से आये और असम के शिवसागर और नवगाँव में बसे बैप्टिस्टों के एक समूह ने तथा असमी समाज की छिट-पुट किन्तु दृढ़ टुकड़ियों ने उनके सर्वदा अनुगुंजित रहनेवाले शब्दों का अनुकरण किया। उनके ये शब्द जीवन के इस रंगमंच से उठ जाने के चौदह वर्ष पश्चात् 1873 में अपनी सम्पूर्ति पा सके। यह अपने आप में कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी। पहले, उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा में असम और असमी भाषा का बड़ा तर्कसम्मत समर्थन किया जो 'आब्जर्वेशन्स ऑन् द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द प्रॉविन्स ऑफ आसाम—1853' तथा 'फ्यू रिमार्क्स ऑन् द असमीज़ लैंग्वेज एण्ड ऑन् वर्नाक्यूलर एजूकेशन इन आसाम—1853' नामक दो ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित हुआ। यह कार्य उन्होंने अंग्रेज़ी में किया ताकि वह सत्ताधारियों तक पहुँच सके। इनका ऐतिहासिक मूल्य और महत्त्व अब तक बना हुआ है।

दूसरे, ढेकियाल ने बच्चों के लिए असमी भाषा की पहली प्राथमिक पुस्तकें (1849) उस समय लिखीं जब असमी भाषा अपने ही प्रान्त से दूर बहुत दूर, पूरी तरह से निर्वासित थी। सम्भवतः इस कार्य को उन्होंने एक चुनौती के रूप में किया ताकि असमी भाषा को आधुनिक शिक्षा के माध्यम के लिए असमर्थ न समझा जाने लगे। उन छोटी रचनाओं में भी उन्होंने असमी को बड़ी ही प्रांजल गद्य शैली में लिखा—सरल, घरेलू और प्रभावशाली। तीसरे, बाङ्ला भाषा को प्रान्तीय पाठशालाओं की प्राथमिक कक्षाओं से निकालने का प्रयास करते हुए, जहाँ पर कि वह अनधिकृत रूप से जमी हुई थी, उन्होंने बाङ्ला भाषा का गहन अध्ययन करके उस पर अधिकार प्राप्त किया। 'डिसीज़न्स ऑफ सदर दीवानी' और 'निज़ामत अदालत' के अपने बाङ्ला अनुवाद को जनवरी 1850 से आगे किश्तों में छपवाकर वे बाङ्ला भाषा के प्रथम असमिया लेखक बने। उनकी 'आइनाओ व्यवस्था संग्रह' व 'नोट्स ऑन् द लॉ ऑफ बंगाल—1855' बाङ्ला भाषा में अपने ढंग की प्रथम रचना है। बंगाल की जनता और समाचार पत्रों ने इनकी बड़ी प्रशंसा की। इस प्रकार श्री ढेकियाल ने समस्त उत्तर-पूर्व भारत की सेवा की। इनके प्रकाशन के लिए उन्होंने कलकत्ते में एक छापाख़ाना भी खरीदा। कलकत्ते की शिक्षा तथा संस्कृत तन्त्रों एवं फ़ारसी कविता के व्यापक अध्ययन से उनके विचार उदार हो गये थे और पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान की अंग्रेज़ी शिक्षा को स्थानीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ाने, पाठशालाओं

और विद्यालयों में संस्कृत सिखाने, स्त्री-शिक्षा, चिकित्सा की सामान्य शिक्षा, कृषि का यन्त्रीकरण, आधुनिक चिकित्सा द्वारा उपचार का विस्तार एवं जनता के लिए उन्होंने स्वस्थ न्यायिक और पुलिस प्रशासन का प्रबल समर्थन किया।

वे अपने समय से कुछ ज़्यादा ही आगे थे, और जितना जनता के लिए आकांक्षा करना और उपलब्ध करना संभव था उससे भी अधिक शीघ्र वे अपने देश की प्रगति चाहते थे। जैसाकि उनके जीवनीकार गुणाभिराम बरुआ ने कहा है कि उनके मन में अपने लोगों के प्रति कल्याण-भावना सदा इतनी प्रबल रही, मानो वे अपने दोनों हाथों से उन्हें सशरीर उठा लेंगे। आसाम के कमिश्नर और गवर्नर जनरल के एजेंट (1861-74), हेनरी हॉपकिन्स ने कहा है कि जो राजा राममोहन राय बंगाल के लिए थे आनन्दराम फूकन वही असम के लिए थे। और उस समय की इन दोनों प्रान्तों की तुलनात्मक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वे राजा राममोहन राय से भी कहीं अधिक असाधारण थे।[1]

दो

आनंदराम ढेकियाल फूकन के पूर्वजों का विचित्र इतिहास 1780 के आसपास घटी एक ऐसी अजीब घटना से शुरू होता है जो असम में पागलपन के उस युग की विशेषता थी। उस समय एक अजीब क़िस्म का राजकुमार गौरीनाथ सिंह (1780-1795) असम के सिंहासन पर बैठा ही था। वह, जैसाकि सर एडवर्ड गेट ने लिखा है, अहोम वंशीय राजाओं में वह सर्वाधिक अयोग्य, रक्त-पिपासु, निन्दनीय और कायर था। कैप्टन वेल्श द्वारा उसे एक हीन, क्षीण, कार्य में अक्षम, सदैव नहाते रहने या प्रार्थना करनेवाले, और हरघड़ी अफ़ीम की पिनक में रहने वाले व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। मोआमारिया जनों के प्रति घोर प्रतिशोध भावना से पूर्ण उसके व्यवहार की चर्चा हो चुकी है। अन्य शत्रुओं के प्रति भी उसका ऐसा ही व्यवहार बताया गया है। घोर बर्बरतापूर्ण व्यवहार के लिए उसे उकसाने को किसी घृणा या प्रतिशोध के उद्दीपन की आवश्यकता नहीं थी। वह क्रूरतापूर्ण कृत्य तो दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के प्रति अपने निपट प्रेम के कारण

1. हेमचन्द्र बरुआ ने फूकन के जीवनी सम्बन्धी विवरणों को 'पथ भिलाला-1873' में उद्धृत किया है।

ही किया करता था। अपने खूनी आदेशों का पालन करनेवाले जल्लादों के समूह के बिना वह कभी घर से बाहर नहीं निकलता था। एक बार एक ज़रा-सी ग़लती के लिए इस सनकी राजा ने अपने युवा सचिव और पुराने मित्र की आँखें निकलवा दीं। बाद में विदेशी दरबार से एक पत्र आया जिसका अर्थ यही सचिव स्पष्ट कर सकता था। अन्धे कर दिये जाने के कारण दूसरा व्यक्ति जब उस सचिव की उँगली को उस पत्र के अक्षरों की आकृति पर फिरा रहा था तब उसे देखकर राजा का पाश्चात्ताप जागा और उसने बैजबरुओं (राजवैद्यों) को सचिव की दृष्टि लौटाने का आदेश दिया। इस प्रकार के तरंगी राजा के सामने सच बोलने के डर से राजवैद्यों ने कहा कि नयी आँखें लगाने के लिए विशेषज्ञ बाहर से बुलाने पड़ेंगे। राजा ने कृपापूर्वक इस प्रकार के विशेषज्ञ का पता लगाने के लिए एक खोजी दल को आदेश दिया।

यह दल खोज करता हुआ बंगाल में मुर्शीदाबाद तक पहुँचा जहाँ पर इस दल की भेंट लक्ष्मीनारायण नामक एक द्रविड देशवासी ब्राह्मण से हुई। अजीब बात थी कि इस ब्राह्मण ने अपने पैतृक घर का केवल इस बात पर परित्याग कर दिया था कि उसके तीन बड़े भाइयों ने उसकी नवविवाहिता पत्नी को हिस्से में उतने गहने नहीं दिये जितने कि उन्होंने अपनी-अपनी पत्नियों को दिये थे। कामाख्या प्रदेश के उन सिल्कधारियों से प्रभावित होकर तथा उनके आने के प्रयोजन को सुनकर किंचित् आश्चर्य और विनोद से वह ब्रह्मचारी यह कहते हुए चल पड़ा कि वह राजा को निश्चय ही प्रसन्न कर देगा। इसी बीच वह सचिव जिसे अन्धा कर दिया था, मर गया। मोआमारिया वैष्णवों के नये विद्रोह में अहोम वंशीय राजाओं की राजधानी लुट गयी और राजा गौरीनाथ सिंह भयभीत होकर गौहाटी भाग गया। यहीं कप्तान वेल्श के नेतृत्व में (1792) साठ-साठ अंग्रेज सिपाहियों की छः टुकड़ियों से उसे वांछित सहायता मिली और वह फिर से कूच करता हुआ अपनी राजधानी रंगपुर आ पहुँचा। लक्ष्मीनारायण राजा के सम्पर्क में आया। राजा और उसके मंत्रियों को उसने अपनी बात सुनायी और हादिरा-चौकी अथवा बंगघाट सीमा-चौकी पर सीमा शुल्क अधिकारी (दुवारिया बरुआ) के पद पर दस हजार रुपयों की कूच-बिहार की एकमुश्त नारायणी मुद्रा और सत्तर हज़ार रुपयों के सामान के वार्षिक वेतन पर नियुक्त हुआ। उसने छः निर्धन बालकों और एक अनाथ बालिका को गोद लेकर अपना एक विचित्र परिवार इकट्ठा किया। ब्राह्मणी की मृत्यु से पहले ही उसके सबसे बड़े दत्तक पुत्र परशुराम ने उत्तराधिकार में सीमा शुल्क अधिकारी का पद प्राप्त किया।

जब लक्ष्मीनारायण का देहान्त हुआ तब दत्तक पुत्रों में से एक, रणराम उसकी मृत्यु का समाचार विधवा पत्नी और परिवार के पास ले गया, जो अभी तक दक्षिण में निवास कर रहे थे। इधर सबसे बड़े दत्तक पुत्र परशुराम की देखरेख में

लक्ष्मीनारायण का गोद लिया असमी परिवार विशेषतः आयात के व्यापार तथा सरकारी सेवा में फल-फूल रहा था। आन्तरिक कलह के कारण अहोम का राजवंश द्रुत गति से पतन की ओर बढ़ रहा था। गौरीनाथ सिंह के उत्तराधिकारी कमलेश्वर (1795-1810) और चन्द्रकान्त (1810-1818) अत्यन्त दुर्बल शासक थे। राजनीतिक मंच पर प्रधानमंत्री पूर्णानन्द बुधगोरे का बोलबाला था। गौहाटी में वायसराय से झगड़कर बदनचन्द्र बरफूकन से लड़ता रहता था। बरफूकन ने अन्ततः ईर्ष्यावश बर्मी आक्रान्ताओं को बुलाकर अपनी मातृभूमि को लुटवा दिया।

परशुराम बरुआ अपनी मृत्युपर्यन्त सन् 1816 तक गौहाटी में हादिरा चौकी के अधीक्षक के रूप में काम करता रहा। उसके दो पुत्र थे। पहले पुत्र हलिराम का जन्म 1801 में हुआ था और दूसरे जज्ञराम (यज्ञराम) का जन्म 1805 में। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त अपने चाचा रणराम के अभिभावकत्व में चौदह वर्षीय हलिराम सीमाशुल्क अधिकारी बना। लेकिन मुश्किल से हलिराम सीमा शुल्क अधिकारी बना ही होगा कि बदनचन्द्र बरफूकन बर्मी सेना को आवा नगर से आहोम की राजधानी में ले आया, जो आजकल जोरहाट में है। चारों ओर एकदम से बड़ी भारी खलबली मच गयी। प्रधानमंत्री मर गया। कुछ लोगों के अनुसार वह अपने ही हाथों मारा गया था। बर्मियों ने चन्द्रकान्त को सिंहासन पर बिठाया और बदनचन्द्र ने अपने आपको 'मंत्री-फूकन' की पदवी से सुशोभित किया किन्तु शीघ्र ही वह एक हत्यारे का शिकार हो गया। पूर्णानन्द के पुत्र रुचिनाथ बुधनगोहेन ने चन्द्रकान्त को सिंहासन से हटा दिया और उसके स्थान पर एक दूसरे राजकुमार पुरन्दर को आसीन किया। बर्मियों ने 1810 में असम पर दूसरा आक्रमण किया और वे चन्द्रकान्त को नाममात्र के शासक के रूप में पुनर्स्थापित करने में सफल हुए। अस्तु, बाद में जब बर्मी सेनाओं को यह देखने के लिए भेजा गया कि उनके द्वारा सिंहासन पर स्थापित शासक सुरक्षित है कि नहीं तभी चन्द्रकान्त ने भ्रान्ति से उन्हें अपना शत्रु समझ लिया और उन पर धावा बोल दिया। घमासान युद्ध हुआ। असम वासियों की बुरी तरह से हार हुई। राजा ने भागकर गौहाटी में शरण ली। बर्मियों ने देश के पूर्वी भाग पर अधिकार कर लिया और जनता पर अपने सभी प्रकार के नृशंस अत्याचारों को क़ायम रखने के लिए अपने पिट्ठू योगेश्वर सिंह को गद्दी पर बिठा दिया। इस समस्त घटनाक्रम को 'मानर दिन' की संज्ञा दी गयी थी। जिसका नाम सुनते ही लोग आज एक शताब्दी बाद भी, काँप जाते हैं।

इस समय बर्मी लोगों की पश्चिमी भागों में भी बढ़ती लूटपाट देख हलिराम ने अपने लोगों के साथ गौहाटी छोड़ दी और वे हादिरा चौकी चले आये। राजा चन्द्रकान्त ने, जो बर्मी आक्रमणों के कारण पीछे हटते आ रहे थे, सन् 1822 में

महगढ़ में बर्मियों से आख़री मोर्चा लिया। इसमें राजा चन्द्रकान्त ने महान् व्यक्तिगत शौर्य का प्रदर्शन किया। कुछ समय तक उनकी सेनाओं ने शत्रु से जमकर लोहा लिया किन्तु अन्त में गोला-बारूद खत्म हो जाने के कारण अपने पन्द्रह हज़ार सैनिक गँवाकर पराजित हो गये। (गेट, पृष्ठ 230)। राजा चन्द्रकान्त की सेना में चैतन्यसिंह सूबेदार जैसे पराक्रमी पंजाबी योद्धा और अनेक गठे सुदृढ़ भारतीय सिपाही थे। इनमें से कुछ तो स्वयं हलिराम बरुआ के भर्ती किये सैनिक थे। जिसने स्वयं लड़ाई में बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। अन्त में, बचने की हड़बड़ी में नौका में रखी संगीन उनकी गर्दन में घुस गयी। संगीन को निकालकर घाव को पगड़ी से बाँधकर, स्त्रियों को पिछलीवाली नौका में बिठाकर तथा सम्बन्धियों सहित स्वयं नौका में बैठकर उन्होंने जोगी घोपा (गोपाल पाड़ा) में जाकर शरण ली। अपने बड़े कारोबारवाले गोपाल पाड़े में हलिराम थोड़े दिन टिके और फिर ब्रिटिश प्रदेशान्तर्गत रंगपुर ज़िले के सिलमारी नगर में जा पहुँचे। यहीं पर राजा चन्द्रकान्त सिंह, पुरन्दर सिंह और बुधनगोहेन अन्य साथियों के साथ शरणार्थियों के रूप में ठहरे थे। ये दोनों राजा अपनी स्थानीय सेना के साथ बर्मियों को अपनी भूमि से लड़कर निकालने के छिटपुट और असफल प्रयत्न करते रहते थे। हलिराम ने गंगास्नान के लिए तीर्थयात्रा की और इस पुण्य कार्य में मुर्शीदाबाद के प्रख्यात जगत सेठ ने उनकी सहायता की। अस्तु, इसी बीच बर्मियों ने, जो हमेशा अंग्रेज़ों से अपने को परेशान करनेवाले अहोम वंशीय इन दो भगोड़े राजाओं को लौटाने की माँग करते रहते थे, बंगाल की उत्तरी सीमा, चटगाँव और सिलहट पर अपने मनमाने आक्रमण से अंग्रेज़ों को नाराज़ कर दिया। इस पर रंगपुर के मजिस्ट्रेट तथा पूर्वी सीमान्त के गवर्नर जनरल के एजेंट डेविड स्कॉट ने बर्मियों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही आरम्भ कर दी। अंग्रेज़ों और बर्मियों के विरुद्ध युद्ध में अंग्रेज़ों को अनेक जीतें हासिल हुईं। उन्होंने बर्मियों को असम की पुरानी राजधानी रंगपुर में सन् 1826 में बुरी तरह पराजित किया। 24 फरवरी 1826 की यन्दाबो की सन्धि के अनुसार अन्य बातों के साथ यह निर्णय लिया गया कि आवा का बर्मी राजा असम के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

इस बीच हलिराम गोपाल पाड़ा आ ही पहुँचे थे। वे अब चन्दरिया रहते हुए अपना कारोबार सम्हालने लगे। उन्होंने वहाँ पर शरणार्थी रूप में आये आदत गिरि के कुश देव अधिकार स्वामी की सुपुत्री प्रसूति से विवाह किया। खेद की बात यह थी कि वे अपने विवाह में 'चौदोल' और बंगाल की गायिका वफावाली बाई के गाने के जश्न का खर्च नहीं उठा सकते थे। हलिराम और उनके भाई यज्ञराम स्कॉट के पूर्व परिचित थे, जो अब असम के प्रशासक के रूप में उनसे इस नये जीते हुए प्रान्त के विषय में अत्यन्त उपयोगी जानकारी प्राप्त करते थे।

स्कॉट के ही परामर्श से दोनों भाई गौहाटी लौट आये और उन्होंने भरलुमुख में अपना व्यापार जमाया। स्कॉट उत्तर असम के अपने दौरे पर हलिराम को अपने साथ ले गये, और नवगाँव तथा दाररंग ज़िलों की राजस्व-व्यवस्था के अतिरिक्त अन्य कई मामलों में उनकी सहायता एवं परामर्श स्वीकार किया। राजा चन्द्रकान्त ने, जब वे गौहाटी में थे, हलिराम और यज्ञराम को क्रमशः ढेकियाल और खारघरिया फूकन के पद पर नियुक्त किया था। स्कॉट ने उनको उसी पद पर माना। यज्ञराम उन कुछ व्यक्तियों में से थे जिन्होंने कलकत्ता में राजा राममोहन राय संस्थापित ब्रह्म समाज की प्रार्थना-सभाओं में भाग लिया था। वे अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त संस्कृत, बाङ्ला अंग्रेजी, फ़ारसी, अरबी, उर्दू और भोटिया आदि कई भाषाएँ जानते थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने हिन्दी-असमी कोश की भी रचना की। (समाचार-दर्पण, कलकत्ता 19 मई 1932)

जब ऊपरी और निचले असम के 'सीनियर' और 'जूनियर डिवीज़न' बनाये गये तब हलिराम सीनियर डिवीज़न की कलक्टरी में शेरिश्तेदार के रूप में काम करते थे और कामरूप ज़िले की राजस्व-व्यवस्था के लिए एक सीमा तक उत्तर-दायी थे। वे पालकी में कार्यालय जाते थे। जिसके दोनों ओर बड़े छत्र लगे होते थे। वे कलकत्ते की लम्बी यात्राओं पर भी जाते थे और बंगालियों के लिए खास तौर पर लिखी अपनी संस्कृत की दो पुस्तकों के कारण उच्च वर्ग तक वे पहचाने जाते थे।

ये दोनों रचनाएँ थीं—संस्कृत में 'कामाख्या यात्रा' (1829) तथा बाङ्ला में 'असम बुरान्जी', 'आसाम का इतिहास'—1831। ये दोनों रचनाएँ 'समाचार चन्द्रिका' मुद्रणालय में छपी थी। वे यहाँ पर इतने लोकप्रिय हो गये थे कि कई बाङ्ला पत्र-पत्रिकाओं में उनके नाम पर श्लेषपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हुईं। 1832 में हलिराम को गौहाटी के सहायक मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किया गया, किन्तु इसी वर्ष उनका देहान्त हो गया। वे संस्कृत तंत्र-शास्त्र और प्रदेश की लोक-गाथाओं के विद्वान थे। वे एक निष्ठावान तांत्रिक थे और दैनिक पूजा-अर्चना का उनका कार्यक्रम बहुत व्यस्ततापूर्ण हुआ करता था।

तीन

हलिराम ढेकियाल फूकन और उनकी पहली धर्मपत्नी प्रसूति से 7 आश्विन 1751 शाके अर्थात् सितम्बर 1829 को आनंदराम का जन्म हुआ। इसके तीन वर्ष बाद ही हलिराम की मृत्यु हो गयी। जब 1833 में पुरन्दर सिंह को शिवसागर और लक्ष्मीपुर जिलों का करदाता राजा बनाया गया तब उन्होंने परम्परागत ढंग से शासन करने का निश्चय किया और भूतपूर्व ढेकियाल के पुत्र होने के कारण वंशानुक्रम में आनंदराम को 'ढेकियाल' की पदवी प्रदान की।

पाँच वर्ष की उम्र में आनंदराम की औपचारिक पढ़ाई शुरू हुई। यज्ञराम खारघरिया फूकन के पुत्र दुर्गाराम, उमानन्द जशोधर अध्यापक तथा दूसरों ने उन्हें संस्कृत की शिक्षा दी। उनको पुरुषोत्तम के व्याकरण 'रत्नमाला व्याकरण' की कारिकाएँ तथा 'मुग्धबोध-व्याकरण' पढ़ाया गया। उन्हें थोड़ी-बहुत बाङ्ला भी सिखायी गयी पर उसमें वे विशेष प्रगति नहीं कर सके। 1835 में गौहाटी में पहला अंग्रेज़ी स्कूल स्थापित हुआ था, जिसके मि. सिंगर प्रधान अध्यापक थे। 1837 में आनंदराम ने इस स्कूल में प्रवेश लिया। 1838 में रणराम और यज्ञराम दोनों का निधन हो गया। परिवार में अब कोई अभिभावक शेष नहीं बचा। वैसे तो पहले ही यज्ञराम ने कमिश्नर कैप्टन जैनकिन् तथा डिप्टी कमिश्नर कैप्टन जेम्स मैथी, जोकि दोनों के व्यक्तिगत मित्र थे, को बच्चों का भार सौंप दिया था। इन दोनों अंग्रेज़ महानुभावों की वहाँ की जनता, विशेषकर विद्यार्थियों पर विशेष कृपा थी। और श्री मैथी वास्तव में आनन्दराम के लिए जीवन भर रक्षक-देवदूत बने रहे। आनंदराम ने इन दोनों सज्जनों से घनिष्ट सम्पर्क बनाये रखा तथा अनेक कार्यों में अपने आपको व्यस्त रखा जैसे त्रिकाल-सन्ध्या, विभिन्न प्रकार के खेल और क्रीड़ाएँ, गौहाटी के मन्दिरों में देवदर्शन, घर में विभिन्न धार्मिक उत्सवों में भाग लेना एवं आतिशबाज़ियों तथा मजलिसों का आनन्द उठाना। बर्मियों द्वारा असम प्रान्त को उजाड़ने की स्मृतियाँ अभी तक जनता के मन में ताज़ी थीं। छोटे-छोटे लड़के बर्मियों और अंग्रेज़ों की बीच कृत्रिम-लड़ाई का खेल खेलते थे। पर्वतीय गुसाईं कृष्णराम न्याय वागीश परिवार के कालिदास भट्टाचार्य से 1841 में औपचारिक रूप से धर्म में दीक्षित हुए। अहोम राजा रुद्रसिंह (1696-1714) इस पर्वतीय गुसाईं परिवार को असम लाये थे।

सिंगर, रोबिन्सन एवं अन्य अध्यापकों के शिक्षण में आनंदराम की बहुत अच्छी प्रगति देखकर जैनकिन और मैथी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आनंदराम को उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता जाने की सलाह दी। 1841 में एक सफ़ेद भैंस की कामाख्या देवी को बलि चढ़ाने की मनौती मनाते तथा अन्य देवी-देवताओं पर

चढ़ावा चढ़ाने के बाद, आनंदराम जी उस समय अपने स्कूल की अंतिम कक्षा में थे, यज्ञराम के पुत्र दुर्गाराम के साथ एक बंगाली मुख्तार, घरेलू नौकरों, रसोइये के साथ मैथी की छः सौ मन वाली नाव में बैठकर कलकत्ते के लिए रवाना हुए। दोनों साहबों ने कलकत्ते की बड़ी फ़र्मों के नाम इन दोनों विद्वानों को पैसा निकालने के अधिकार-पत्र दिये। इसके अतिरिक्त इन साहबों ने शहर के कुछ प्रतिष्ठित अंग्रेज़ सज्जनों, हिन्दू कालेज की प्रबन्ध समिति और राजकीय शिक्षा परिषद् के सदस्यों के नाम परिचय-पत्र भी दिये। कलकत्ते में इस दल ने कोलू टोला में एक मकान किराये पर लिया। दोनों युवा फूकनों को डेविड देयर के प्रबन्धाधीन कॉलिज के जूनियर विभाग में तीसरे वर्ष में प्रवेश मिला। वे वहाँ राजा द्वारकानाथ ठाकुर, राजा राधाकान्त देव, मोतीलाल सील जैसे विद्वानों से मिले जिन्होंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक उनका स्वागत किया। मोतीलाल सील ने उनका विशेष ध्यान रखा। 1841 में दुर्गादास एक आकस्मिक बीमारी से दिवंगत हो गये। आनन्दराम अपने कालेज के पास पटलडांगा लेन में आ गये। दुर्गादास की मृत्यु से भयभीत, परिवार में जायदाद के झगड़ों से परेशान, उनकी माताजी ने मैथी साहब से आनंदराम को कलकत्ता से वापस बुलाने के लिए कहा। आनन्दराम, जिनकी प्रोन्नति अब कॉलेज के सीनियर विभाग के तृतीय वर्ष में हो गयी थी, अपने शिक्षकों (रामचन्द्र मित्र, ईश्वरचन्द्र साहा, गोपीकृष्ण मित्रा, जयगोपाल सेठ, जोन्स, कैप्टन रिचार्डसन आदि) और सहपाठियों में अपनी अध्ययनशील प्रकृति, सद्व्यवहार एवं बाङ्ला पर अपने अधिकार के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हो गये थे। किताबों, अलमारियों, आधुनिक फ़र्नीचर, दरियों, पालकी और अन्य खरीदी हुई आधुनिक सामग्री के साथ छः सौ मन वाली भाड़े की नौका में बैठकर नवम्बर 1844 में वे घर लौट आये। यह बड़े खेद की ही बात है कि वे अपनी कॉलिज शिक्षा पूरी नहीं कर पाये यद्यपि उन्होंने गणित, यूनान, रोम, भारत और इंग्लैंड के इतिहास, अंग्रेज़ी कविता एवं ज्ञान की अन्य शाखाओं पर अच्छी तरह से अधिकार प्राप्त कर लिया था। अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी उच्चारण में उन्होंने विशेष योग्यता प्राप्त की थी।

चार

अधूरी शिक्षा प्राप्त करके कलकत्ते से लौटे इस सोलह वर्षीय युवक आनंदराम को बड़े विस्मय और आदर से देखा जाता था। उनका सुसंस्कृत रहन-सहन और आचरण सभी के लिए कौतूहल का विषय था। अपने चारों ओर उन्होंने प्रेम और स्वाधीनता के वातावरण की सृष्टि कर ली थी। अपने कई मकानों में से एक मकान के तीन कमरों को उन्होंने तीन ढंग से सजाया था। एक कमरे में उन्होंने स्थानीय लोगों के स्वागत करने के लिए बड़े-बड़े गद्दे बिछाये थे और उन पर गावतकिये लगाये गये थे। दूसरे कमरे में योरोपीय आगन्तुकों के लिए चार किताबों की अलमारियाँ, मेज-कुर्सियाँ और सोफ़ासेट था। उनका अध्ययन-कक्ष भी इस कमरे के समान सजा था। वे अपनी पुस्तकों का खास ख़्याल रखते थे—उन्हें वर्गीकृत करके सुरुचिपूर्ण ढंग से अपने पुस्तकालय में जमाते थे। कप्तान मैथी ने उनके आगे की पढ़ाई की व्यवस्था ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के स्नातक मिस्टर ब्लैंड नामक एक मिशनरी की देखरेख में कर दी थी। स्वयं फूकन ने भी अपने आप गहन और व्यापक अध्ययन किया। वे प्रतिदिन जॉनसन के अंग्रेजी कोश के कुछ पृष्ठ याद करते थे।

वैशाख 1767 शक यथा अप्रैल सन् 1845 में पशुपति राजगुरु फूकन की पुत्री माहेन्द्री से आनंदराम का विवाह हुआ। यह एक महान अवसर था जिसमें आतिशबाज़ी छोड़ी गयी और मजलिसों का आयोजन किया गया। आनंदराम फूकन स्त्री-शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को स्वयं लिखना-पढ़ना सिखाया।

उन्हें अब सांसारिक उत्तरदायित्वों का बोझ उठाना था क्योंकि हलिराम की विशाल जायदाद कमियों के शासन-काल में तहस-नहस हो गयी थी। उन्होंने उसे सम्हालने-सुधारने के उपाय सोचे। इसके लिए उन्होंने जज या मैजिस्ट्रेट बनने का निश्चय किया। पारिवारिक जनों एवं जैनकिन और मैथी की सलाह से गौहाटी के मुख्य सदर अमीन चन्द्रसेन भराली काकती से उन्होंने क़ानून और न्यायिक प्रक्रिया की शिक्षा लेनी आरम्भ की। इसके साथ ही घर पर उन्होंने तत्कालीन भारतीय सरकार के नियमों, अधिनियमों, अदालती फ़ैसलों, न्यायिक काग़ज़ातों तथा 1804 में बने असम के सामान्य अधिनियमों या संहिताओं का श्रमपूर्वक अध्ययन किया। उन्होंने स्थानीय अदालतों, मुंसिफ़ों, वकीलों, अमलों, शरिश्तेदारों और पेशकारों के दैनिक (रोजमर्रा) के कामों को बड़े ग़ौर से देखा और इसकी न्याय व्यवस्था की कमियों को पहचाना। उन्हें अदालती लाल फीताशाही और इन्साफ़ मिलने में लम्बा समय लगाने जैसी बुराइयाँ साफ़ नज़र आयीं। इसके बारे में

उन्होंने लिखा—प्रान्त के एक सिरे से दूसरे सिरे तक अगर किसी छोटे-से-छोटे मुहर्रिर से अदालती व्यवस्था के बारे में विचार लिये जाएँ तो वह बिना किसी हिचकिचाहट के ऐलान कर देगा कि ये अदालतें महज अभिजात और शक्तिसम्पन्न लोगों के लिए हैं। आम आदमी के लिए उनसे राहत या इन्साफ़ की अपेक्षा करना नासमझी और बेवकूफ़ी है। चालाकी, धोखाधड़ी और झूठी गवाही देना आदि बातें अदालत में चारों तरफ़ फैली हुई हैं। दीवानी और फ़ौजदारी दोनों तरह के मामलों में सच को झूठ और झूठ को सच बनाया जाता है। (न्याय-व्यवस्था : असम राज्य के प्रशासन पर टिप्पणियाँ) उनका अंग्रेजी भाषा का गम्भीर ज्ञान यहाँ पर बड़ा काम आया। इसकी वजह से वे अदालती दस्तावेज़ों का अनुवाद करके और क़ानूनी सलाह देकर सरकारी पक्ष की सहायता कर सके।

उस ज़माने में अभिजात वर्ग में फ़ारसी का बड़ा बोलबाला था। फूकन ने एक मुंशी से फ़ारसी की तालीम पायी और फ़ारसी गद्य और कविता में विशेष रुचि होने के कारण 'गुलिस्तां', 'बोस्तां' और 'पण्डनामाह' के अध्ययन तक पहुँच गये। उन्होंने संस्कृत का भी गहन अध्ययन किया। अंग्रेजी में भी व्यापक रूप से पढ़ा। पूर्व बंजाली परगना के महान तांत्रिक गोपीनाथ चौधुरी की सहायता से उन्होंने 'तन्त्रसार' का अनुशीलन किया। विद्यार्थी तो हमेशा उन्हें घेरे रहते थे। वे उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे। उन्हें विद्यार्थियों का स्कूल छोड़कर छोटी-मोटी नौकरियों के लिए अदालतों के चक्कर लगाना क़तई पसन्द नहीं था। वे खुद भी अभी जीविका अर्जन करने की स्थिति में नहीं थे। उन्होंने 'चौधरी', मौजादार विरुयास आदि वित्तीय अधिकारियों के काम की सही जानकारी हासिल की, ज़मीन के सर्वेक्षण और व्यवस्थापन (सेटलमेंट) को समझा, ज़मीन के क़ानूनी अधिकार के नियमों का अध्ययन किया, कृषि और रैयतों की हालत का अध्ययन किया। यह सब करने का उनका उद्देश्य था कि वे जज या मजिस्ट्रेट की नौकरी मिलने पर इस ज्ञान का उपयोग कर सकें। मैथी और जैनकिन की व्यावहारिक सलाह से उन्होंने अप्रैल 1847 में खाता परगना के 'जिम्मादार'—सुपरवाइज़र के पद को स्वीकार किया। वे वित्तीय व्यवस्था के कुप्रबन्ध से पहले से ही परिचित थे। परगना में अपने दो साल के तजुर्बे के आधार पर वे कामरूप की राजस्व-व्यवस्था को और भी गहराई से समझ सके और बाद में रैयतवारी व्यवस्था की खराबियों को दूर करने के लिए उन्होंने कई उपयोगी सुझाव दिये। उसी साल नवम्बर में नलबारी में उन्होंने तीन महीने तक स्थानापन्न (ओफ़िशिएटिंग) मुंसिफ़ के पद पर काम किया और अपने निर्णयों के परिष्कृत प्रारूपों से सभी को प्रभावित किया। सितम्बर 1848 से अगले छः महीनों तक वे अस्थायी रूप से मुंसिफ़ रहे। 1849 में अन्य दो सदस्यों—मैथी और डाल्टन, जो क़ानून के चीफ़ एसिस्टेंट कमिश्नर (मुख्य सहायक आयुक्त) थे, की एक समिति द्वारा

आयोजित क़ानून और भूमि-सर्वेक्षण विषयों की परीक्षा में वे चुन लिये गये और जुलाई 1849 को उन्हें 'सब-एसिस्टेंट' का पद मिलने ही वाला था किन्तु किसी कारणवश इस सम्बन्ध में कमिश्नर की सिफ़ारिश स्थगित कर दी गयी। वर्ष के अन्त में गोपाल पाड़ा में बिजली ज़मीदार अमृत नारायण भूप के दीवान बने। हब्राघाट और खुंटाघाट परगनों के ज़मीदार और रैयतों के बीच बहुत पहले से विवाद होता चला आ रहा था। ये दोनों परगने अंग्रेज़ों ने मोहम्मद नवाब से प्राप्त किये थे। इनको उन्होंने प्रबन्धन और राजस्व के लिए ज़मींदार के अधिकार में रख दिया। फूकन ने जागीर के प्रशासन को सुव्यवस्थित, सरल और कारगर बनाया। इस सम्बन्ध में उन्होंने राजस्व, शान्ति और व्यवस्था, न्यायतंत्र, वित्तीय अधिकारियों के कर्त्तव्य और दण्ड कार्यवाही सम्बन्धी नियम सरकारी अधिनियमों और 'शरिस्ता' नियमों के अनुसार बनाये। उनके द्वारा बनाये नियम 'फूकन दीवान की क़ायदाबन्दी' कहलाते हैं। ज़मींदारी अधिकारियों ने इन नियमों को स्वीकार किया किन्तु ज़मींदार रैय्यत के झगड़ों के मामले सुलझ नहीं सके। फूकन गौहाटी आ गये। उन्होंने असम के कमिश्नर और ग्वालपाड़ा के आयुक्त के सामने इन मामलों को बड़े सुतार्किक ढंग से रखा जिसके साथ समुचित क़ानूनी निदेश भी थे। 1850 में फूकन तीन महीने के लिए नवगाँव और कुछ समय के लिए ग्वालपाड़ा के सब-एसिस्टेंट बने। यह पद आजकल के ई. ए. सी. के बराबर है। बिजली के मामले में कमिश्नर और कलेक्टर के फ़ैसले (निर्णय) ज़मींदार के ख़िलाफ़ होने के कारण फूकन ने दीवान की हैसियत से कलकत्ते के राजस्व सदर बोर्ड (राजस्व मुख्य मण्डल) में अपील दायर की। किन्तु मामला दोबारा कमिश्नर के पास भेज दिया गया। मार्च 1852 में फूकन फिर गौहाटी लौट आये और बाङ्ला भाषा में एक 'डायजेस्ट ऑफ़ लॉज ऑफ़ सिविल केसेज़' पुस्तक तैयार करने का काम हाथ में लिया।

पाँच

अक्टूबर 1852 में फूकन बारपेटा के स्थायी सब-एसिस्टेंट कमिश्नर बने। जल्दी ही उन्हें डिप्टी कलेक्टर के अधिकार प्राप्त हुए और इस प्रकार बिजनी राज के साथ उनके सम्बन्ध औपचारिक रूप से समाप्त हो गये। 1853 की बारिशों

में, कलकत्ता की सदर दीवानी और निज़ामत अदालत के जज ए. जे. मोफ्फट मिल्स को भारत के गवर्नर जनरल ने असम प्रान्त के प्रशासन की तहक़ीक़ात (जाँच-पड़ताल) कर उस पर अपनी रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया गया। फूकन ने पहले असम की जनता की ओर से एक याचिका देने की बात सोची। लेकिन बाद में उन्होंने अपनी ही ओर से ज्ञापन के रूप में एक सर्वांगपूर्ण पर्चा लिखने का निश्चय किया जिसमें उन्होंने शिक्षा और स्वास्थ्य, क़ानून और व्यवस्था, वित्त एवं न्यायतंत्र के सम्बन्ध में असम प्रान्त की अनेक शिकायतों को सामने रखा। 4 जुलाई, 1853 को वे गौहाटी में मिल्स से मिले और अपना ज्ञापन मिल्स के सामने पेश किया। साथ ही, उन्होंने मौखिक रूप से भी कुछ बातें बतायीं। मिल्स ने उनकी इन बातों के महत्त्व को समझा और उनके इस ज्ञापन को अपनी 'असम प्रान्त पर रिपोर्ट' के अनुलग्नकों में सम्मिलित किया। असमी भाषा को स्कूली शिक्षा में पुनर्स्थापित करने की सिफ़ारिश करने की उनकी सलाह को जज ने लगभग पूरी तरह से स्वीकार किया।

जैसाकि उन्हें स्थानान्तरण के आदेश मिल चुके थे फूकन सब-एसिस्टेंट के रूप में काम करने के लिए नवगाँव रवाना हुए, जहाँ पर अन्ततः उन्हें समय-समय पर सारे ज़िले के प्रशासन का भार सौंपा गया। 1854 में असम कोड के अन्तर्गत उन्हें जूनियर एसिस्टेंट के अधिकार दिये गये। इसके साथ ही उन्हें सदर अमीन और डिप्टी कलेक्टर के भी अधिकार सौंपे गये। नवगाँव में फूकन ने अपने को विभिन्न लोक-कल्याण कार्यों में व्यस्त रखा, उदाहरण के लिए, सालाना बाढ़ को रोकने के उपाय करना जिससे कि ज़िले की खेती प्रतिवर्ष नष्ट हो जाया करती थी। साथ ही, पाठशालाओं का निरीक्षण और उनकी प्रगति का पता लगाना और जब नवगाँव अकाल की गिरफ़्त में आया, तब लोगों की सहायता के उपाय करना। उनका अपना बौद्धिक कार्यकलाप भी था। वे अंग्रेज़ी संविधियों एवं निर्णयों के अनुवाद में हमेशा जुटे रहते थे। उन्होंने अपनी बाङ्ला पुस्तक 'आइन ओ व्यवस्था संग्रह' (1855) का भी प्रकाशन करवाया, जो भारतीय भाषाओं में अपने ढंग की अकेली पुस्तक थी। प्रकाशित होते ही उसकी बड़ी माँग हो गयी। चीफ़ एसिस्टेंट कप्तान बटलर और बैप्टिस्ट मिशनरी डॉ. माइल्स ब्रोन्सन से देश-कल्याण के मामलों पर उनकी गहरी बातचीत होती थी। 1837 से स्कूलों और अदालतों से असमी भाषा के निर्वासन ने उनके मस्तिष्क को बहुत विचलित किया था।

इस विषय पर उन्होंने भरपूर मेहनत की, वे इस सम्बन्ध में अमरीकन, बैप्टिस्ट, ब्रोन्सन और स्टोडार्ड से, जिन्हें नवगाँव में तैनात किया गया था, लम्बी बातचीत किया करते थे। इनके अलावा नैथन ब्राउन, ए. एच. डेनफोर्थ तथा एस. एम. ह्वाइटिंग, जो विशेष अवसरों पर शिवसागर से आया करते थे—उनसे भी

इस विषय पर चर्चा होती रही थी। ये मिशनरी लोग अपने स्कूलों में असमी भाषा के माध्यम से शिक्षा देते थे और सरकार को इस बात का औचित्य जताना चाहते थे क्योंकि सरकार के बाङ्ला भाषा में स्वयं के प्रयास स्पष्टतः निष्फल सिद्ध हो रहे थे। इस सम्बन्ध में ब्रोन्सन ने एक ज्ञापन (मेमोरेंडम) तैयार किया, जिसे फूकन की सहायता से सरकार को पेश किया जाना था। जैसाकि फूकन के जीवनीकार गुणाभिराम बरुआ ने टिप्पणी की है—"जनता की भलाई के लिए फूकन के अलावा कोई भी ऐसा दूसरा आदमी नहीं है जो एक भी शब्द बोले, अथवा चर्चा करे अथवा किसी प्रकार की ठीक सलाह दे।" इन लोगों में से अधिकांश ऐसे रहे, जो अपने-आपको बंगाल के नादिया-शान्तिपुर या कन्नौज (उत्तर प्रदेश) में असम में आया हुआ बताने में गौरव का अनुभव करते रहे हैं। उनको इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं थी कि विद्यालयों में बाङ्ला पढ़ायी जा रही है या असमी। या कि न्यायालयों में कौन-सी भाषा बोली या लिखी जा रही है।

फूकन ने असमी भाषा के समर्थक बैप्टिस्ट पादरी साहबों की सहायता की और बदले में उन्होंने स्थानीय भाषा के सम्बन्ध में फूकन की सहायता की। इस प्रकार पारस्परिक सहायता से दोनों पक्षों ने मिलकर असमी भाषा का समर्थन किया। (आनंदराम ढेकियाल फूकनेर जीवनचरित, पृष्ठ 127) "एक बार मनीषा का विस्तार हो जाने पर उसका संकोच फिर नहीं होता। उस समय असमी भाषा के लिए एक विशाल आन्दोलन चल रहा था। फूकन भी इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये।" (उपर्युक्त, पृष्ठ 129)। उन्होंने 'ए नेटिव' के छद्म नाम से अंग्रेजी में 'ए फ्यू रिमार्कस ऑन द असमीज़ लैंग्वेज़ एण्ड ऑन वर्नाकुलर एजुकेशन इन असम' (1855) लिखी। इस पुस्तक की सौ प्रतियाँ शिवसागर बैप्टिस्ट मिशन प्रेस में ए. एच. डेनफ़ोर्थ द्वारा छपवायी गयी। इस प्रकाशन की एक प्रति बंगाल सरकार को बेची गयी एवं बची हुई प्रतियाँ असम के प्रमुख व्यक्तियों में मुफ़्त बाँट दी गयीं। इस प्रकाशन का सारांश 'द इण्डियन एण्टीक्वैरी' (1896, पृष्ठ 57) में प्रकाशित किया गया था।

यद्यपि असमी भाषा के दो अथवा तीन व्याकरण प्रकाशित हो चुके थे किन्तु असमी की शब्दावली छपवाने का प्रयास अभी नहीं हुआ था। कप्तान बटलर के परामर्श से फूकन ने 'अभिधान' (कोश) लिखना आरम्भ किया। बटलर ने पहले विज्ञापन भेजने शुरू कर दिये। लगभग तिरानवे व्यक्ति पुस्तक खरीदने को तैयार हो गये। फूकन ने सोचा कि वे अपना कोश तब छपवाना शुरू करेंगे, जब उसके खरीदारों की संख्या डेढ़ सौ तक पहुँच जाएगी। (उपर्युक्त, पृष्ठ 129; 'अरुनुदोइ' खण्ड-11, सं. 12, दिसम्बर 1956) ने सूचना दी कि फूकन द्विभाषिक शब्दकोश बना रहे थे। 'इंग्राजी-असमिया' और 'असमिया-इंग्राजी' और उन्होंने इस पत्रिका से अनुरोध करते हुए लिखा कि लोगों के देखने के लिए उनके कोश के कुछ पृष्ठ

नमूने के तौर पर छापें। इस विशेष अंक में अंग्रेजी 'ए' से आरंभ होकर 'एवॉल्यूशन' तक के अंग्रेजी शब्दों के असमी अर्थ दिये गये थे। इस प्रकार के कोश के नमूने आगामी अंकों में भी छापे गये। इन दोनों कोशों को सम्भवतः एक ही जिल्द में छपना था क्योंकि फूकन ने इनके लिए 'एकवचन' का प्रयोग किया है।

फूकन एक बड़े कर्त्तव्यनिष्ठ अधिकारी थे। वे जनता के प्रति अपने कर्त्तव्य के विषय में हमेशा जागरूक रहते थे। एक बार, जब उन पर 1855 में सारे जिले का प्रशासन-भार था, उन्होंने राजस्व सम्बन्धी दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतिवेदन (रिपोर्ट) असम के कमिश्नर के पास भेजे। इस विषय पर उन्होंने पहले मिल्स को लिखे अपने पूर्व ज्ञापन पर पुनर्विचार किया था, जैसे रैयत के निजी क्षेत्र का त्याग अथवा 'इस्तीफ़ा' और 'चभुवा' की सृष्टि अथवा सरकार और रैयत के बीच के बिचौलिये द्वारा निजी जायदाद की सृष्टि। उन्होंने कप्तान बटलर से इस बारे में विचार-विमर्श किया था। वे ग़रीबों के लिए एक औषधालय भी खोलना चाहते थे किन्तु उस समय के लोग डॉक्टरी इलाज के खिलाफ़ थे। जब 1857 में भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम छिड़ा और (जिसे प्रथम सिपाही-विद्रोह की संज्ञा मिली) असम प्रान्त की सरकार का मन फूकन के इस आश्वासन को मानने के लिए तैयार नहीं था कि वहाँ की जनता अंग्रेज़ शासकों के खिलाफ़ नहीं उठेगी। राजा पुरन्दर सिंह के पौत्र कन्दर्पेश्वर सिंह ने अपने दूत दीवान मनीराम दत्त बरुआ को अहोम राजाओं का राज उनको वापस करने का प्रस्ताव लेकर भेजा। मनीराम पर इन विद्रोहों में शामिल होने के शक़ के कारण उनको कलकत्ते में बन्दी बनाकर असम भेज दिया गया। उन पर वहाँ मुक़द्दमा चला और फ़रवरी 1858 को उन्हें जोरहाट में एक अन्य व्यक्ति पियाली बरुआ के साथ सज़ा दे दी गयी। उनके साथ के अन्य लोगों को या तो काले पानी की सज़ा हुई या फिर लम्बा कारावास।

11 जून 1859 को आनंदराम फूकन अचानक गम्भीर रूप से बीमार पड़ गये। स्थानीय डॉक्टर के इलाज शुरू करते-करते भी बीमारी उलझती चली गयी और जब तक उचित निदान हो पाये तब तक वे 16 जून 1859 को इस संसार से विदा हो गये।

उनका सारे समाज में बड़ा आदर था। वे बहुत ही लोकप्रिय अधिकारी थे। चारों ओर लोगों की बहुत बड़ी भीड़ उनके अन्तिम दर्शन के लिए इकट्ठी हो गयी। 'ओरुनुदोइ' ने जिससे वे सम्बद्ध थे और जिसमें अपने लेख लिखते रहते थे, तथा कलकत्ता के अखबारों और पत्रिकाओं ने उनकी मृत्यु का समाचार देते हुए उनका जीवन-परिचय प्रकाशित किया।

फूकन अपने पीछे अपनी पचास वर्षीया माँ और छब्बीस वर्षीया पत्नी माहिन्द्री के अतिरिक्त दो पुत्र और दो पुत्रियाँ छोड़ गये थे। पहला पुत्र राधिकाराम तब साढ़े पाँच वर्ष का था जिसने बाद में ब्रिटिश विश्वविद्यालय से

रसायन शास्त्र में पी-एच. डी. उपाधि ग्रहण की (उनके शोध-ग्रन्थ को सर जे. सी. बोस और पी. के. रॉय ने देखा था और उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी)। राधिकाराम ने अपना जीवन इंग्लैण्ड में बिताया। फूकन का दूसरा पुत्र अन्नदाराम, जो उस समय मुश्किल से ढाई साल का था, ने बाद में चाय का व्यापार सँभाला। दो लड़कियों में से एक पद्मावती ने (1853-1927), जो तब साढ़े सात साल की थी, अपने पिता के आदर्शों के अनुकूल घर पर ही बहुत अच्छी शिक्षा प्राप्त की। वह दो पुस्तकों की लेखिका बनी—'सुधर्मार उपाख्यान' (1884) और 'हित साधिका' (1885 में प्रकाशित), जिसमें उपदेशात्मक निबन्ध संकलित हैं।

छः

आनंदराम ढेकियाल फूकन उन थोड़े-से महान आधुनिक भारतीयों में से हैं जिन्हें आधुनिक तथा प्राचीन, दोनों प्रकार के ज्ञान और विद्वता की अदम्य पिपासा, काम करने की दुर्दम आकांक्षा थी। ऐसे लोगों के प्रति उनके मन में निश्छल स्नेह था जो उचित नागर जीवन के अभाव में पिछड़े समाज के जंगलों में एक तुच्छ जीवन जी रहे थे। उनके पास एक खुला और उदार मस्तिष्क था, जोकि नये विचारों और नयी जीवन-शैलियों को ग्रहण करता था, किन्तु विवेकपूर्ण ढंग से। उनके अपने ही लोग उनसे घृणा भी करते थे, और प्यार भी। घृणा इसलिए कि वे समझते थे कि वे या तो ईसाई हो गये हैं या शास्त्र-विरोधी नास्तिक। और प्रेम इसलिए कि वे उनके कृपालु और सौम्य स्वभाव से विमोहित थे। अपने इजलास में भी वह सुविज्ञ और सहृदय थे न कि औपचारिक एवं कठोर। 'वे बुराइयों के अन्तरंग में भलाई देख लेते थे।' इसके फलस्वरूप जिसके प्रति अन्याय हुआ है उसे पूरा-पूरा न्याय मिलता और जो अपराधी होता उसे प्राप्त दण्ड उचित प्रतीत होता था।

आनंदराम के चाचा रणराम बरुआ के पुत्र गुणाभिराम बरुआ, ढेकियाल फूकन के अभिभावकत्व में पले-बढ़े और शिक्षित हुए थे। वे भी फूकन के समान असमी साहित्य के प्रवर्तक थे। उन्होंने 'आनंदराम ढेकियाल फूकनार जीवन-चरित' (1880) शीर्षक से जीवनी लिखी। इस जीवनी का आधार आनंदराम

फूकन द्वारा छोड़ी गयी उनकी डायरियाँ एवं उनके सम्पर्क से प्राप्त अपने अनुभव थे। उन्होंने फूकन के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान रखते हुए उनके जीवन तथा कार्य-कलापों का मूल्यांकन किया है। उनके शिक्षा एवं भाषा संस्कार के प्रति तीव्र अनुराग के विषय में लिखते हैं:

> "फूकन की कॉलिज शिक्षा बिलकुल अधूरी थी। जब वे घर लौटे तो उनके पास पढ़ने की अटूट लगन थी और उन्होंने अपने आपको शिक्षित करने में बड़ी साधना की थी। वे अंग्रेजी, बाङ्ला और असमी पूरी तरह से जानते थे। उन्होंने इनमें किताबें लिखीं। उनका उर्दू और फ़ारसी का ज्ञान स्तरीय था। सामान्य संस्कृत की पुस्तकें वे समझते थे। पढ़ने का उनको बहुत शौक था। वे प्रतिदिन अध्ययन में लगे रहते थे। वे लोगों से बात करते हुए भी लिखते और पढ़ते रहते थे। उनको पढ़ने का इतना चाव था कि ऐसा प्रतीत होता था कि वे नींद में भी कुछ पढ़ रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन में किसी भी सभा को सम्बोधित नहीं किया। फिर भी उन्होंने अंग्रेजी में बोलने और लिखने का बहुत अभ्यास किया। जब वे अंग्रेजों में बोलते थे तो ऐसा मालूम होता था कि कोई अंग्रेज बोल रहा है। लिखने में भी ऐसा ही आभास होता था। बाङ्ला भाषा पर भी उनका ऐसा ही अधिकार था और इसमें उनकी बातचीत सुनकर किसी को भी उनके कलकत्ता क्षेत्र के बंगाली होने का विश्वास हो सकता था। वे थोड़ी-बहुत फ़ारसी भी लिखते थे। उर्दू में भी वे बात करते थे। संस्कृत पर उनका इतना अधिकार नहीं था कि वे लिख या बोल सकें। वे अपनी असम भाषा की बोलने की शैली का विशेष ध्यान रखते थे। जब असमी का अच्छा शब्द उन्हें मिलता तो वे संस्कृत अथवा अन्य किसी भाषा का समान शब्द उसके स्थान पर प्रयोग करना पसन्द नहीं करते थे। सामान्य जनों के मध्य असमी भाषा का प्रयोग हो इसके लिए उन्होंने बड़े प्रयास किये। वे इस बात में अग्रणी रहे।" (पृ० 163-64)।

फूकन ने शिक्षा और ज्ञान को अत्यन्त अपेक्षित प्रोत्साहन दिया। वे पाठ-शालाएँ अथवा स्कूल खोलने के बड़े उत्साही थे। चूँकि उन दिनों नवगाँव में कोई अंग्रेजी स्कूल नहीं था उन्होंने अपने घर में ही स्कूल खोल दिया, जहाँ एक अध्यापक सवेरे और शाम नियमित रूप से पढ़ाया करते थे, उनसे प्रेरित होकर गुणाभिराम ने कलकत्ते लौटने पर एक सभा संगठित की, जिसका नाम 'ज्ञान प्रदायिनी' था। यहाँ पर विभिन्न विषयों पर विचार करने के लिए प्रति सप्ताह स्थानीय जन एकत्रित हुआ करते थे। वे स्त्री शिक्षा के अथक समर्थक थे। उन्होंने अपनी पत्नी को खुद पढ़ाया और अपनी पुत्री पद्मावती का पाँच वर्ष की अवस्था में विधिवत विद्यारंभ करवाया। वे तर्क देते थे कि आदमी और औरत दोनों एक समान हैं।

इसलिए यदि स्त्री अशिक्षित रहती है तो पुरुष के आधे शरीर को लकवा मार जाता है। इस प्रकार के थे उनके विचार। वे नारी-उत्थान के भी प्रबल पक्षधर थे। अपने पिता हलिराम के समान वे पान चबाना और चारों ओर पीक थूकना पसन्द नहीं करते थे। खान-पान, वेशभूषा और सामान्य सामाजिक व्यवहार में वे आधुनिकता के हामी थे। अपने घर पर त्यौहारों अथवा उत्सवों के अवसरों पर वे विशेष पकवान बनवाते थे। वे स्थानीय शैली के व्यंजन, बंगाली पकवान तथा साहबों और मुसलमानों के लिए पाश्चात्य शैली के भोजन तैयार करवाते थे। इस प्रकार उन्होंने आनेवाले समय पर अपनी छाप डाली और वे उस उदार समाज के अग्रदूत थे, जिसे अभी आना था।

इस बात का रिकार्ड उपलब्ध है कि 1852 में जब वे बिजनी रियासत केस के सम्बन्ध में कलकत्ता में थे तब वे मेटकाफ़ हाउस आया करते थे, जहाँ पर सोलह हज़ार पुस्तकें थीं। 9 मार्च को रूस के पीटर महान की एक जीवनी उनके हाथ आयी और इस सम्राट के महान कार्यों को पढ़ते हुए उन्हें प्रेरणा मिली और उन्होंने अपनी डायरी में लिखा कि वे ज़ार पीटर के समान अपने देश का कल्याण करेंगे।

यह सच है कि पीटर महान के समान ही आनंदराम फूकन उनमें से एक थे जिन्होंने असम प्रान्त के लिए पश्चिम का वातायन खोलने का प्रयत्न किया।

सात

अमरीकन बैप्टिस्टों ने असमी भाषा को पुनरुज्जीवित करने के लिए बहुत काम किया। 'असम के अमरीकी मिशनरी' फूकन ने 1855 में लिखा था, "श्रीरामपुर के अपने सुयोग्य साथियों की तरह ही पिछले बीस बरस से असमी भाषा के एकमात्र प्रबल, उत्साही समर्थक रहे हैं" [ए फ़्यू रिमार्क्स ऑन् द असमीज़ लैंग्वेज, एटसेट्रा, पृ. 56] यहाँ पर 'एकमात्र' शब्द को संभवतः अर्थपूर्ण सन्दर्भ में रेखांकित करना होगा। रैवरेण्ड डॉ. नाथन ब्राउन तथा उनकी पत्नी एजिजा, आदरणीय ओलिवर टी. कटर एवं उनकी पत्नी हैरियट एवं आदरणीय डॉ. माइल्स ब्रोनसन, असम में आनेवाले और काम करनेवाले मिशनरियों में पहले थे। वस्तुतः वे असमी भाषा के पहले ईसाई लेखक बने। इस अर्थ में वे असमी भाषा के पहले

आधुनिक लेखक थे। उन्होंने असमवासियों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने का प्रयास किया किन्तु असफल रहे। उनको ही असम प्रान्त में अपने धर्म के उपदेश देने की अनुभूति थी न कि अंग्रेज पादरियों को। इसमें अच्छी बात यह हुई कि उन्होंने असमी भाषा को समुचित ढंग से ग्रहण कर लिया। उन्होंने शिवसागर, नवगाँव, गौहाटी तथा अन्य स्थानों में अंग्रेज़ी और वर्नाकुलर (मातृभाषा) में स्कूल खोले। ब्रिटिश प्रशासकों से भिन्न रूप में ये अमरीकन जनता से सीधे सम्पर्क में आये और उन्होंने जाना कि असमी भाषा सुन्दर और सरल है और उसका बाङ्ला भाषा से साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक है (जैसाकि—मिल्स की रिपोर्ट 'ऑन् द प्राविन्स ऑफ असम' में ब्राउन का कथन है। इसीलिए उन्होंने असमी भाषा को अपने स्कूलों की शिक्षा का माध्यम बनाया जबकि अंग्रेज़ी सरकार ने बाङ्ला को असम की राजभाषा और शिक्षा का माध्यम माना। अमरीकन मिशनरियों ने असम में 1836 में दो छापेखाने खोले। जैसाकि अंग्रेज़ डॉ. विलियम कैरी के नेतृत्व में कलकत्ता के पास ब्रिटिश बैप्टिस्टों ने पहले यह काम किया था। अमरीकन मिशनरियों ने भी असमी भाषा में पुस्तकें प्रकाशित करना आरम्भ किया। 1846 में उन्होंने शिवसागर से असमी भाषा में धर्म, विज्ञान और सामान्य ज्ञान के विषयों पर 'द ओरुनदोइ' नामक पत्रिका निकाली। फूकन अपनी शिक्षा अधूरी छोड़कर सुसंस्कृत जीवन सम्बन्धी अनेक विचारों तथा ग्रीस, रोम, ब्रिटेन और भारत जैसे सभ्य राष्ट्रों के बारे में विशाल जानकारी के साथ तब कलकत्ते से लौटे ही थे। उनके पास मातृभूमि के विकास की बहुत सारी योजनाएँ थीं। यह युवक जो तब अठारह वर्ष का हो गया था, और जो अपने देश की प्रगति को विशेषकर ब्रिटेन की प्रगति के प्रकाश में देखना चाहता था। जिसके बारे में उसने बड़े जोश से हाल ही में इतिहास में पढ़ा था। अप्रैल, सन् 1947 'ओरुनदोइ' (वोल्यूम II नं. III) में 'इंगलान्दर बिवरन' (इंग्लैंड सम्बन्धी विवरण) शीर्षक से सुविचारित निबंध लिखा। यह बात लक्षणीय है कि फूकन ने यह निबन्ध बैप्टिस्टों की पत्रिका में लिखा, जिनके साथ उन्हें असमी भाषा को स्कूलों और अदालतों में उसका उचित स्थान दिलाने में कन्धे-से-कन्धा मिलाकर लड़ना था।

उनका 'इंगलान्दर बिवरन' चार पृष्ठों का था, जो 'द ओरुनदोइ' (24 ए-31 बी) के आठ कॉलमों में आया। फूकन ने आधुनिक इंग्लैंड की शैक्षिक और औद्योगिक-प्रगति के वर्णन का उपयोग तत्कालीन असमी लोगों को चेतावनी देने के लिए किया, जिनको कि उन्होंने सीधे और स्पष्ट रूप से रचनात्मक-कार्य करने और समृद्धि, सौन्दर्य, प्रेम, सुख और न्यायपरता को प्राप्त करने के लिए शिक्षा, साहित्य और विज्ञान के पाश्चात्य मापदंड अपनाने के लिए सम्बोधित किया। वे लोगों से प्यार करते थे, इसलिए उनकी कमियों के प्रति कठोर थे और उनकी

अकर्मण्यता और अपव्यय के लिए उनको भी लताड़ते थे। वे असम को औद्योगिक प्रगति की दिशा में ले जाना चाहते थे, किन्तु इसके साथ वे कृषि एवं आधुनिक साधनों का निर्माण भी चाहते थे। उनकी भाषा और शैली में उत्कृष्ट गुण थे। बैप्टिस्ट लेखकों के समान और आजकल के हम लोगों से भिन्न वे नये विचारों और वस्तुओं को अभिव्यक्ति देने के लिए उधार लिए शब्दों के प्रयोग से बचते थे, और या तो उनके लिए अपनी भाषा के पुराने शब्दों का प्रयोग करते थे या उनके लिए नये गढ़ते थे। उनकी भाषा बाइबिल की भाषा के समान सरल थी जो प्राय: कविता की आवेगपूर्ण ऊँचाइयों को छूने लगती थी।

अपने देशवासियों के भाग्य को देखकर वे कितने बेचैन हो उठते थे यह उनके निबन्ध के निम्नलिखित अनुच्छेद से स्पष्ट है :

> "हे कृपामय जगदीश्वर ! इन आसाम वासियों को अपने देश को सभ्य और पुण्यात्मा बनाने के लिए काम करने की इच्छा हो। उन्हें अपने अभावों को, अपनी दयनीय दशा को समझने की बुद्धि दो। अपनी अलौकिक शक्ति से इन्हें सभ्य बनाओ ! वे तुमको जान पाएँ और तुम्हारी आज्ञा का पालन कर सकें, इस योग्य बनाओ। हे परमपिता ! जगन्नियन्ता, तुम उस समय को यहाँ लाओ जब असम एक अरण्य नहीं रहेगा अपितु कुसुमित उपवन बन जायेगा, जब उसकी नदियों में डोंगी नहीं अपितु जलयान चलेंगे, जब बाँस के बने घरों के स्थान पर पत्थर के भवन होंगे, जब गाँव-गाँव में सहस्रों स्कूल, विद्वत्सभाएँ, अस्पताल और शरणालय होंगे, जब सभी मनुष्य पारस्परिक ईर्ष्या त्याग देंगे और एक दूसरे भाई के समान प्यार करेंगे। जब दो तोला अफ़ीम के लिए झूठी गवाही देने की बजाए वे लाखों रुपयों की रिश्वत भी ठुकरा देंगे। करोड़ों रुपयों की घूस (रिश्वत) मिलने पर भी किसी पर अन्याय नहीं करेंगे और जब वे इस देश में यह भी नहीं जानेंगे कि वेश्यावृत्ति, अफ़ीम अथवा शराब किस चिड़िया का नाम है।"[1]

1. हे कृपामय जगदीश्वर, एइ असम देशार लोक सकलाक स्वदेश सभ्य ज्ञानी अरु धार्मिक करिबलेयी मारी दिये···

आठ

इस बीच, आनंदराम फूकन बैप्टिस्टों की पत्रिका 'ओरुनदोइ' में अपने लेख नियमित रूपसे लिखने लगे थे। इन बैप्टिस्टों ने अपने स्कूलों के लिए असमी भाषा की प्रारम्भिक पाठ्य-पुस्तक लिखनी आरम्भ कर दी थी। 1855 में फूकन ने बैप्टिस्टों के बारे में लिखा :

> "यद्यपि मिशनरियों का मूल उद्देश्य बाइबिल और धार्मिक पुस्तकों को असमी भाषा में प्रचारित करना है किन्तु वे शिक्षा के महत्त्वपूर्ण सन्देश को भूले नहीं हैं। उन्होंने असमी भाषा में इतिहास, भूगोल, गणित एवं अन्य विषयों पर प्रारम्भिक पुस्तकें छापी हैं।" ('ए फ्यू रिमार्क्स आन द एसमीज लैंग्वेज, एटसेट्रा' : पृष्ठ 56)
>
> इसी लेख में उन्होंने स्वयं को अन्य पुरुष के रूप में भी सम्बोधित किया है। 1849 में 'द फ्रैण्ड्स ऑफ यंग असम' शृंखला का मंतव्य था कि असमी युवाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम यहाँ के मूलवासी द्वारा ही तैयार हो।

योरोपीय अधिकारियों और स्थानीय समुदाय से उगाहे गये चन्दे से इसके दो अंक प्रकाशित हुए। इस पाठ्यक्रम के संकलनकर्त्ताओं को पूर्ववर्ती अंकों की बिक्री से प्राप्त धन द्वारा आगामी अंकों को प्रकाशित करने की आशा की थी किन्तु कुछ इस वजह से कि असमवासियों ने योरोपीय साहित्य और विज्ञान के महत्त्व को भी नहीं समझा और इससे भी ज्यादा इस वजह से कि सरकार ने आर्थिक सहायता देने से हाथ खींच लिया, यह आशा पूरी न हो सकी। इस शृंखला में पीटर पार्ले चेम्बर 21 शिक्षा पाठ्यक्रम, जनता के लिए सामान्य जानकारी एवं अन्य इसी प्रकार की सामग्री का अनुवाद रखने की मंशा थी। संकलनकर्त्ता इस शृंखला को जारी रखने के लिए अब भी गम्भीरतापूर्वक व्यग्र हैं (पृष्ठ 56)। उनको इस बात का पता नहीं था कि यह काम कभी पूरा नहीं हो पायेगा और केवल 'थोड़े-से किये और बहुत-से अनकिये' की अनुभूति अन्तर को सालती रहेगी। इस बात का खेद है कि 'द फ्रैण्ड ऑफ़ यंग असम' अथवा मूल भाषा में 'असमिया लरार मित्र' के दोनों अंक आजकल कहीं भी नजर नहीं आते। फूकन ने अपनी पुस्तक में इन दो अंकों के विषय में दो-दो टिप्पणियाँ 'केटलॉग ऑफ़ असमीज बुक्स' 48वें पृष्ठ पर दी है :

भूगोल—असमी भाषा में भूगोल शिक्षक : मरे के 'एनसाइक्लोपीडिया' एवं अन्य स्रोतों से संकलित एवं वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। यह 'द फ्रैण्ड ऑफ़ यंग असम' का तीसरा अंक है : (समाचार चन्द्रिका प्रेस, 1849, पृष्ठ 177)।

पाठ्य-पुस्तकें—भाषा-शिक्षक : नैतिकता, इतिहास, भूगोल, प्राकृतिक इतिहास, प्रकृति-दर्शन तथा स्थलाकृति आदि लेखों का संचयन। 'द फ्रैण्ड ऑफ़ यंग असम' की दूसरी श्रृंखला (समाचार चन्द्रिका प्रेस, 1849, पृ० 222, नक्शों तथा चित्रों सहित)।

वास्तव में उपर्युक्त टिप्पणियाँ दोनों पुस्तकों के मुखपृष्ठ पर दिये असमी लेखन-पद्धति के नमूने हैं। दूसरे और तीसरे अंक पर 'बालकोपदेशक' एवं 'भूगोल प्रकरण' के उपशीर्षक हैं। हमारे सौभाग्य से 'असमिया लरार मित्र' नामक कृति के कुछ लेख 'ओरुनुदोइ' नामक पत्रिका के चौथे (1849), छठे (1851) और सातवें अंक (1852) में भी छापे गये हैं। गुणाभिराम बरुआ, जिनकी चर्चा फूकन ने छात्रों के लिए असमी पाठों की श्रृंखला पूरी करने के सम्बन्ध में की थी, ने 1873 में फूकन की पुस्तक के दूसरे संस्करण में 399 पृष्ठों (मूल दो अंकों : 222 + 177 पृष्ठों की सामग्री) को 72 पृष्ठों में समेटकर प्रकाशित कराया क्योंकि अब स्कूलों में शिक्षा देने के लिए स्थानीय भाषा को फिर से माध्यम के रूप में ग्रहण कर लिया गया था। असम के शिक्षा अधिकारी इस पुस्तक को पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत कराना चाहते थे। अधिकारियों से पुस्तक को स्वीकृत कराने के प्रयास में गुणाभिराम ने दूसरे अंक (द्वितीय कांड) में से कुछ सामग्री और शायद तीसरे से भी कुछ और जैसा कि उन्होंने कहा, उन्होंने असम प्रान्त के विभिन्न जिलों और जनजातियों का विवरण देकर उसको विस्तृत किया। उन्होंने ढेकियाल फूकन के वर्ण-विन्यास (वर्तनी) को बहुत अस्त-व्यस्त कर दिया। इसी बीच हेमचन्द्र बरुआ ने, जो कि हमेशा 'ओरुनदोइ' और डॉ. नैथन ब्राउन द्वारा लिखवायी जानेवाली सरलीकृत वर्तनी का विरोध करते रहते थे, अपनी इस परिवर्तित लिखावट के लिए विजय प्राप्त की और वही आजकल प्रचलित है।

फूकन ने 'असमिया लरार मित्र' की रचना तब की थी जब वे बिजनी राज के दीवान थे क्योंकि यहाँ काम करने के लिए उनके पास पर्याप्त समय था। जब उस किताब के खण्ड छपे तो उनको स्कूलों में नहीं लगाया गया। सरकार से भी किसी प्रकार के संरक्षण की आशा नहीं थी। क्योंकि उस समय की सरकारी-नीति असमी भाषा के संरक्षण की नहीं अपितु उसे असम प्रान्त से निर्वासित करने की थी। स्थानीय लोग इस पुस्तक के दोनों खण्डों का महत्त्व नहीं समझ सके क्योंकि इनमें योरोपीय साहित्य और विज्ञान की चर्चा थी। यह वहाँ के लोगों के लिए नितान्त अपरिचित संसार था। युवा दीवान के लिए उसकी आकांक्षाओं के छले जाने के कारण यह घोर हताशा की बात थी। फिर भी स्थानीय भाषाओं को स्कूल की कक्षाओं में स्थान दिलाने के लिए लड़ना था। उनके उत्साह को क़ायम रखने के लिए और प्रेरणा देने के लिए उनको नये मित्र मिल गये थे। यह 'ओरुनदोइ' पत्रिका का दल था। उनके पास असमी में पुस्तक समीक्षा के रूप में

सच्चा और ठोस प्रोत्साहन था—इस लेखक की निस्वार्थ सेवा के लिए जिसने कि प्रकाशन पर अपना नाम तक नहीं दिया। पुस्तक प्रकाश्य खण्डों के विषय में लिखा था—"हमें अभी गौहाटी से 'असमिया लरार मित्र' शीर्षक से दो सुन्दर पुस्तकें प्राप्त हुई हैं—पहला और दूसरा भाग।"

इसी दौरान आनंदराम ढेकियाल फूकन कलकत्ते गये और वहाँ हिन्दू कॉलेज में उन्होंने अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। जब वे वहाँ से लौटे तो उन्होंने अपने खाली समय में अपने देश की भलाई के लिए इन पुस्तकों को लिखना आरम्भ किया। अंग्रेजी भाषा से उन्होंने बड़े ही परिश्रम से अपनी सामग्री संकलित की। उसका अंग्रेजी अनुवाद करके इन पुस्तकों की रचना की तथा कलकत्ते में उनको सुन्दर अक्षरों में छपवाया।

> "यहाँ-वहाँ थोड़ी-बहुत ग़लतियाँ अवश्य मिलती हैं किन्तु किसी भी भाषा में पहली बार पुस्तकें लिखे जाने पर ऐसी ग़लतियाँ तो होंगी ही। फिर भी, इन पुस्तकों में बहुत कुछ ऐसा है जो सुन्दर और विवेकपूर्ण है और इन पुस्तकों को खरीदकर पढ़ने में लोगों की भलाई है। बहुत अच्छा होगा यदि व्यक्तिगत विलास और आनन्द में निमग्न रहने की बजाए शिक्षित वर्ग फूकन के समान इस प्रकार की शिक्षाप्रद पुस्तकें अपने देशवासियों के लिए लिखे।
>
> फूकन को लोगों में अपना यश फैलाने की लालसा नहीं थी। उन्होंने पुस्तक पर अपना नाम तक नहीं दिया। यदि अनाम रहकर असमी लोगों की भलाई के लिए लिखनेवाले ऐसे व्यक्ति को प्रशंसा के दो शब्द भी इस पीढ़ी से न मिलें तो भी उनका यश आनेवाली कई पीढ़ियों तक बना रहेगा।"

'ओरुनदोइ' पत्रिका ने अपने अंकों में छपे हुए 'असमिया लरार मित्र' के कुछ पाठ प्रकाशित करने आरम्भ किये।

ये पाठ यद्यपि बच्चों के लिए तैयार किये गये थे, इनमें से कुछ का अपना साहित्यिक सौन्दर्य ही नहीं अपितु वैभव है। देश-भक्ति ही आनंदराम के अन्तः-कपाटों को खोलने की कुंजी थी। यद्यपि स्रोत-सामग्री प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तकों से ली जा रही थी किन्तु वह आनंदराम की अन्तरात्मा से ओतप्रोत थी और प्रायः अपने देशवासियों को चेतावनी के रूप में प्रकट हुई जो इस सारे देश को दूसरा इंग्लैण्ड बनाना चाहती थी। उनके कुछ निबन्ध (जैसे 'गॉड इज़ मोर ग्लोरियस दैन हिज़ वर्क्स', 'चाइल्ड ऑफ़ रीजन', 'द आइज़ ऑफ़ लार्ड आर इन एवरी प्लेस') में एक काव्यात्मक उन्मेष और लालित्य है। उनका निबंध 'इनवेज़न ऑफ़ असम' (असम पर शत्रु देश द्वारा आक्रमण) कुछ ही अनुच्छेदों में समस्त 'अहोम वंश' का पूर्ण इतिहास है। गुणाभिराम बरुआ ने जब अपनी पुस्तक 'असम बुरांजी' लिखी तब फूकन की 'इनवेज़न ऑफ़ असम' शीर्षक पुस्तक उनके लिए एक बढ़िया नमूने के

रूप में काम आयी। स्वयं आनंदराम को अपने पिता की बाङ्ला में लिखी शायद ऐसी ही किसी रचना से प्रेरणा मिली होगी। इसमें पुराने 'असमी बुरांजी' इतिहास की अनुगूँज है। यही अनुगुंजन गुणाभिराम बरुआ के असम के इतिहास के मधुर विवरणों में पाया जाता है। समस्त पुस्तक की भाषा नवीन कथ्य अर्थात् पाश्चात्य इतिहास और साहित्य का संतुलित अनुसरण करती है। असम की जनता और धरती के चित्रण में लिखे गये अनुच्छेद एक मोहक परिष्कृति है। संक्षेप में, उनके लेखन में जीवित, सुव्यवस्थित, प्रांजल गद्य-शैली का विकास हुआ।

नौ

जैसाकि गुणाभिराम बरुआ सूचित करते हैं, हलिराम ढेकियाल फूकन संस्कृत और बाङ्ला भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। हलिराम ने इन दोनों भाषाओं में दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रणयन किया—पहली बाङ्ला भाषा में 'असम-बुरांजी' (1829) जोकि असमी बुरांजियों के इतिहास से संकलित थी और दूसरी संस्कृत में 'कामाख्या यात्रा-पद्धति' (1831), जिसमें विशेषकर बंगाल से आनेवाले यात्रियों की जानकारी के लिए संस्कृत-तंत्रों का सार संकलित था। हलिराम के सुपुत्र आनन्दराम भी बाङ्ला भाषा में निष्णात थे, यद्यपि वह विनम्रतापूर्वक कहते हैं कि "हमने लिखी और बोली जानेवाली बाङ्ला भाषा का बंगाल में अपने निवास के समय थोड़ा-बहुत परिचय प्राप्त किया।" (ए फ्यू रिमार्क्स···एटसेट्रा, पृ. 3)। किन्तु यह केवल 'परिचय' से काफ़ी कुछ अधिक था और जैसाकि गुणाभिराम बरुआ ने लक्षित किया है कि फूकन ने अंग्रेज़ी और बाङ्ला दोनों ही भाषाओं का अभ्यास किया और इन दोनों भाषाओं पर उनका प्रशंसनीय अधिकार था।

आनंदराम फूकन एक अत्यन्त कुशल प्रशासक थे। उनका ज्ञान विवेकपूर्ण और आदतें व्यवस्थित थीं। जब वे बिजनी रियासत के दीवान के रूप में कार्यरत थे उन्होंने जायदाद के समस्त प्रशासन को व्यवस्थित किया। उसके लिए एक संहिता की रचना की जोकि उनके नाम से प्रसिद्ध हुई। जब 1850 में केवल तीन महीनों के लिए वे सब-एसिस्टेंट (आजकल के सहायक आयुक्त के बराबर) थे तब उन्होंने अपने व्याकरण सम्मत और तर्कपूर्ण भाषा में लिखित निर्णयों द्वारा लोगों को

चकित कर दिया था क्योंकि उनके पूर्ववर्ती इस पद पर आसीन किसी अधिकारी ने फ़ैसले लिखने में भाषा के व्याकरण और तर्क की परवाह नहीं की। भाषा पर अधिकार और पूरी सुरुचि से कार्य-संपादन मानो उनके रक्त में था।

सरकार की सहायता से सदर दीवानी और निज़ामत अदालत के फ़ैसले प्रति-माह अंग्रेज़ी में प्रकाशित होते थे। इनके बाङ्ला भाषा में उपलब्ध न होने के कारण इस उच्च न्यायिक निकाय के विवेकसमस्त निर्णयों को सामान्य जनता के लिए जानना असंभव था। फूकन ने इस शोचनीय स्थिति पर ध्यान दिया और इस कमी को दूर करने के लिए आगे आये। उन्होंने 1850 के जनवरी और फ़रवरी महीनों के अदालत के निर्णयों का अनुवाद किया। फिर उन्हें छपवाने के लिए कलकत्ते में मैसर्स रोज़ारियो एण्ड कम्पनी के पास भेज दिया। यह बाङ्ला भाषा में छपी अदालती फ़ैसलों की पहली किताब थी। गुणाभिराम ने लिखा है—"यद्यपि बाद में इस क्षेत्र में अनेक अनुवादक और प्रकाशक हुए किन्तु इनके मूल में फूकन की ही पहल और विचारधारा थी।" फूकन के 1850 के मार्च के फ़ैसलों के बाङ्ला अनुवाद कलकत्ता के बैप्टिस्ट मिशन प्रेस में छपे। छपाई और प्रकाशन-कार्य की देखभाल करने के लिए मिलिटरी एकाउण्ट सर्विस में लेखक का काम करनेवाले अपने एक पुराने मित्र श्री नवीनचन्द्र रे को नियुक्त किया। आरम्भ में सदर अदालत के विद्वान् जज फ़ैसलों का एक असमवासी द्वारा अनुवाद करवाने से हिचकिचा रहे थे। किन्तु फूकन का कार्य जनता द्वारा समर्थित होकर इस परीक्षा में सफल हो गया। फूकन ने एक मुद्रणालय की स्थापना भी की थी जिसका नाम 'कलकत्ता न्यू प्रेस' था। यह विशेषकर अदालती निर्णयों को छापने के लिए खोला गया था और 1852 में गुणाभिराम के नाम पर पंजीकृत हुआ था। इसके प्रका-शनों पर फूकन अपना नाम नहीं लिखते थे, किन्तु वे बाङ्ला भाषा में क़ानून की पुस्तकें लिखनेवालों के अग्रदूत बने। यह एक ऐसा सत्य है जिसे पूर्णतया भुला दिया गया है और आज के बंगाल में लोगों को इसका ज्ञान नहीं।

दस

बिजनी रियासत के काम में पूरी तरह से व्यस्त रहने के कारण फूकन को पता चला कि ज़मींदार और उसकी रैयत के अधिकारों का स्पष्ट रूप से बँटवारा अथवा सीमांकन नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि बाङ्ला भाषा में कोई ऐसी रचना

नहीं है जिससे सामान्य जनता दीवानी अदालतों के क़ानून का ज्ञान प्राप्त कर सके। इसलिए 1852 में उन्होंने सरल, लोकप्रिय और प्रवाहमयी बाङ्ला भाषा में, उस समय वहाँ प्रचलित क़ानूनों के सार का अनुवाद करने का निर्णय किया। ये क़ानून व्यक्ति के अधिकारों से और जायदाद सम्बन्धी अधिकारों से सम्बद्ध थे। ऐसे अधिकार साधनों से प्राप्त किये जा सकते थे व उन्हें खोया सकता था। निजी, अन्याय एवं वैधानिक क्षतियों को दूर करने के लिए क़ानूनी साधन जनता सम्बन्धी अन्याय, अपराध एवं दुर्व्यवहार का निराकरण इन्हीं के अन्तर्गत आता था। इन विषयों पर विवेचन के लिए लेखक ने मैकफ़र्सन की तत्कालीन रचना 'सिविल प्रोसीज्योर' का अपेक्षित संशोधन-संवर्धन किया और फिर इसके अनुवाद करने की योजना बनायी। इसमें 'बियूफ़ोर्ट डायजेस्ट' से संकलित सामग्री, ब्लैकस्टोन की व्याख्याएँ और अन्य स्रोतों से प्राप्त सामग्री भी इसके पाँचवें भाग में सम्मिलित करने का इरादा था।

(आनंदराम ढेकियाल फूकन कृत नोट्स/आन/द लॉज ऑफ़ बंगाल की भूमिका/संख्या-I। 'आइन ओ व्यवस्था संग्रह' अर्थात् बंगदेश चलित शास्त्र सार, देशाचार, इंगलान्दिया लाँ, गवर्नमेंटर आइन। कन्स्ट्रवशन सर्कुलर ऑर्डर ओ अदालतेर नजीर इत्यादि सार संग्रह—श्री आनंदराम फूकन प्रणीत प्रथम खण्ड, कलकत्ता-1855) (अंग्रेज़ी भूमिका, बाङ्ला में 'भूमिका' अथवा 'परिचय' तथा 'निर्घट' अथवा अन्तर्वस्तु अथवा 'विषय-सूची' नन्द ताल्लुकदार की 'आनंदराम ढेकियाल फूकनार रचना संग्रह' के परिशिष्ट में दी गयी है, जो गौहाटी में 1977 में प्रकाशित हुई) फूकन ने अंग्रेज़ी और बाङ्ला भाषा में वहाँ के सभी जजों को असम के कमिश्नर श्री जेनकिन की सहायता से पर्चे बाँटे।

एक कर्तव्यनिष्ठ 'सब-एसिस्टेंट' और बाद में सारे ज़िले के प्रभारी अधिकारी के रूप में वे जो भी समय अपने व्यस्त कार्यक्रम से निकाल पाते थे—उसे वे क़ानून की पुस्तकों के अनुवाद में उपयोग में लाया करते। 'आइन ओ व्यवस्था' के पहले खण्ड के प्रकाशन ने अपने ऊपर लिखे आनन्दराम फूकन के काम को दूर-दूर तक फैला दिया जहाँ-जहाँ भी लोग देश के क़ानून को बाङ्ला भाषा में जानना चाहते थे। यह बाङ्ला भाषा का अपनी प्रकार का पहला प्रकाशन था अर्थात् किसी भी भारतीय भाषा का पहला प्रकाशन। पुस्तक की बहुत माँग थी। और नवीनचन्द्र तथा गुणाभिराम इसकी प्रतियों को प्रतिदिन ग्राहकों को भेजा करते थे। इसकी भाषा 'सदर अदालतेर निष्पत्ति' नामक उनकी पुस्तक के समान सरल और सीधी थी, एवं क़ानूनी जानकारी को बंगाली पाठक की पहुँच में रखती थी।

ग्यारह

भारतीय साहित्य के निर्माताओं के रूप में आनंदराम ढेकियाल फूकन की उपलब्धियों का ऐतिहासिक महत्त्व उनकी साहित्यिक रचनाओं 'इंगलान्दर बिबरन' जो 1847 में 'ओरुनदोइ' पत्रिका में छपा था, और दो खण्डों में प्रकाशित 'असमिया लरार मित्र' के कारण नहीं है, ये तो देसी स्कूलों में पढ़ाने के लिए लिखी गयी पुस्तकें थीं, जहाँ पर वे तब तक नहीं पढ़ायी गयीं जब तक कि फूकन की मृत्यु के चौदह साल बाद गुणाभिराम ने उनमें से चयन, उनका संशोधन, संक्षेपण एवं पर्याप्त रूप से परिवर्तन नहीं किया। बल्कि उनका साहित्यिक महत्त्व उनकी क़ानूनी पुस्तकों के बाङ्ला अनुवाद जैसे 'सदर अदालतेर निष्पत्ति' और 'आईन ओ व्यवस्था' से भी नहीं है, जो बाङ्ला में अपने प्रकार की पहली रचना है। उनका ऐतिहासिक महत्त्व उस लड़ाई में है जो उन्होंने स्थानीय भाषा, असमी को सरकारी भाषा बनाने और प्रान्त सरकार के शिक्षा कार्यक्रम में शिक्षा के माध्यम के रूप में पुनर्प्रतिष्ठित करने के लिए लड़ी थी। इस सम्बन्ध में उनका, अच्छे अंग्रेज़ अधिकारी जैसे बटलर, लैम्ब तथा अन्य अमरीकन मिशनरी जैसे ब्रोन्सन, स्टोडार्ड और कभी-कभी ब्राउन डेनफ़ोर्थ तथा दूसरों से बहुत विचार-विमर्श हुआ करता था। उन्होंने अपना धर्म युद्ध 'असमिया लरार मित्र' के दो खण्डों से आरम्भ किया और विशेष रूप से अंग्रेज़ों की शिक्षा नीति द्वारा हुए अन्याय पर आक्रमण किया। इसके लिए उन्होंने दो और सम्बद्ध रचनाएँ लिखीं—पहला उनका 'मेमोरेण्डम' 'आब्ज़र्वेशन ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ द प्रॉविन्स ऑव असम' था जो उन्होंने ए. जे. मोफेट मिल्स को दिया। इसमें उन्होंने 1853 के प्रशासन की जाँच-पड़ताल की। उनकी दूसरी रचना 'ए फ़्यू रिमार्क्स ऑन द असमीज़ लैंग्वेज एण्ड ऑन द वर्नाक्यूलर एजूकेशन इन असम, 1855' थी।

अंग्रेज़ों ने असम पर अधिकार करने के थोड़े दिनों बाद ही, अर्थात् 1835 से असम में प्रचलित तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के प्रति ग़लत दृष्टिकोण अपनाया और उसके सम्बन्ध में ग़लत नीति का अनुसरण भी किया। मिल्स ने 1854 में लिखी अपनी 'रिपोर्ट ऑन द प्रॉविन्स ऑफ़ असम' में असम प्रान्त की पारम्परिक शिक्षा-पद्धति की बुराई की और उसे अस्वीकार किया। वे कहते हैं—"जब हमने इस देश पर अधिकार किया तब यहाँ शिक्षा की दशा बड़ी शोचनीय थी।" ऐसा प्रतीत होता है कि यह निष्कर्ष उन्होंने ग़लत आँकड़ों के आधार पर निकाला जोकि उन्हें ज़िला अधिकारियों ने दिये थे। उदाहरण के लिए, कप्तान बटलर ने नवगाँव से रिपोर्ट दी कि 1838 में शायद उनके ज़िले में तीस शिक्षित व्यक्ति भी नहीं थे। "एक सार्वभौम अज्ञान बिना किसी भेद के समस्त समाज में व्याप्त था।"

कप्तान रॉबिट और कप्तान डाल्टन ने भी इसी मत का समर्थन किया। डाल्टन ने लखीमपुर से उस ज़िले का वर्णन करते हुए लिखा, "यह एक ऐसा जिला है जिसमें डिब्रूगढ़ के स्कूल की स्थापना से पूर्व उच्च वर्गों में भी एक ऐसे आदमी को पाना कठिन था जो अपना नाम लिख सके।"

इस सम्बन्ध में फूकन को मिल्स को बताना पड़ा कि स्वाधीन देसी राज के अन्तर्गत सम्भ्रान्त वर्गों में संस्कृत का ज्ञान एक सामाजिक दायित्व और ध्यान देने योग्य विषय था। वे आगे कहते हैं कि "प्रत्येक गाँव में संस्कृत पढ़ाने के लिए पाठशालाएँ थीं और बहुत-से छात्र नदिया और वाराणसी में अध्ययन के लिए जाते थे।" (परिशिष्ट 'जे', मिल्स को सौंपी गयी रिपोर्ट, पृ. 1)। जैसाकि एडवर्ड गेट ने हमें बताया, असम के अंग्रेजी राज में विलय से कुछ साल बाद तक पुराने स्कूल या 'टोल्स' चलते रहे। हालांकि बाद में इन विद्यालयों के स्थान पर आधुनिक देसी स्कूलों की स्थापना हुई जिनमें शिक्षा का माध्यम बाङ्ला था। ('रिपोर्ट ऑन द प्रोग्रेस ऑफ़ हिस्टोरिकल रिसर्च इन असम, 1914') इसलिए फूकन ने किंचित् कटुतापूर्वक अपनी बात रखी :

> "हमें अत्यन्त दुख के साथ यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है कि इंगलैंड की ज्ञान सम्पन्न सरकार के अन्तर्गत इस देश की शिक्षा-व्यवस्था नितान्त पिछड़ी हुई अवस्था में है। ब्रिटिश साम्राज्य में असम के विलय के पश्चात्, प्रोत्साहन के अभाव में संस्कृत की शिक्षा बिलकुल समाप्त हो गयी है।"

असम में विद्या-संस्थानों की एक निश्चित संख्या स्थापित की गयी, जिनका नामकरण 'वर्नाकुलर स्कूल' किया गया। इन स्कूलों में अन्य प्रान्तीय भाषा अर्थात् बाङ्ला में भी शिक्षा दी जाती थी जिसे विद्यार्थी तो क्या अध्यापक भी कम समझते थे। अध्यापक जो शिक्षा प्रदान करते थे वह बिलकुल प्रारम्भिक और सामान्य थी। थोड़ा-बहुत लिखने-पढ़ने और ज्ञान प्राप्त करने के अतिरिक्त शायद ही कभी कोई छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। थोड़ी-सी पुस्तकें, जो विभिन्न विषयों के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए लिखी गयी थीं वे भी अन्य प्रान्तीय भाषा में थीं—जिसके कारण वे लोकप्रिय नहीं हो पायीं। बाङ्ला भाषा का ज्ञान प्राप्त करने में बहुत समय नष्ट होता था और असमी के स्थान पर बाङ्ला का प्रयोग करने का कारण यह दिया जाता था कि बाङ्ला 'न्यायालयों की भाषा है' जैसे कि असमवासियों को केवल क़ानूनी अधिकारियों का राज बताना हो। विचित्र बात तो यह है कि इन स्कूलों का तथाकथित उद्देश्य यह होने पर भी वर्नाकुलर स्कूलों के बहुत थोड़े-से ही विद्यार्थी प्रान्तीय अदालतों में विश्वास अथवा उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर नियुक्त होने के योग्य समझे जाते थे। इसलिए हम

सोचते हैं जब तक इन 'वर्नाकुलर' स्कूलों में दी जा रही शिक्षा का ढाँचा बिलकुल नहीं बदलता तब तक इस बात को सिद्ध करने के लिए बहुत कम तर्क की आवश्यकता है कि इस देश में लोकप्रिय शिक्षा कभी उन्नति नहीं कर पाएगी। जब मिल्स आसाम आये तब वहाँ कुल मिलाकर 72 स्कूल थे।

अपनी पुस्तक 'ए फ़्यू रिमार्क्स···' में फूकन बाङ्ला भाषा को असमी स्कूलों के लिए चुनने की ग़लती के स्रोत को खोजते हुए लिखते हैं :

> "ब्रिटिश सरकार ने भारत में शिक्षा की उन्नति के लिए जो भी विभिन्न उपाय किये हैं उनमें से असम के लोगों को शिक्षा देने के लिए कौन-सा माध्यम सबसे उपयुक्त है इस विषय पर भी देश में विभिन्न प्रकार की परिचर्चा हो रही है। असमी भाषा की अधूरी जानकारी के कारण कुछ लोग दावा करते हैं कि बाङ्ला को, जोकि बंगाल में शिक्षा का माध्यम है, असम में भी शिक्षा के माध्यम के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। बाङ्ला और असमी भाषाओं के अन्तर से थोड़ा अधिक परिचित कुछ लोग इस विषय पर सही दृष्टिकोण अपनाने लगे हैं और अपनी शिक्षा के सबसे सफल माध्यम के रूप में असमी भाषा को ग्रहण करने की कुछ हद तक धारणा को व्यक्त करने लगे हैं। फिर भी हमारे देश के दुर्भाग्य से वे लोग, जिनके हाथ में हमारे देश का प्रबन्ध और जन-शिक्षा का नियंत्रण सौंपा गया है, बाङ्ला को ही शिक्षा का उचित माध्यम समझते हैं। उनको ये विश्वास दिलाया गया है कि बाङ्ला और असमी एक ही भाषा है और इसके अनुसार हमारे स्कूलों में बाङ्ला की बोली को हमारे प्रान्त की स्थानीय बोली के रूप में पिछले दस-बारह सालों से प्रतिष्ठित किया गया है। जहाँ हम इस बात पर गहरा दुख मनाते हैं कि बाङ्ला और असमी भाषाओं में कोई अन्तर नहीं देखा गया और खेदपूर्वक इस बात को लक्ष्य करते हैं कि जो बात इतनी स्पष्ट है उसके सम्बन्ध में ऐसी ग़लती की जाए। हमारे अकाट्य विवेक के आधार पर हमें अपने इस विश्वास को व्यक्त करने की अनुमति दी जाए कि यही ग़लती असम के लोगों के मानसिक विकास को अवरुद्ध करने का कारण है।" (पृ. 1)

अपनी पुस्तक 'ऑब्ज़रवेशन्स···' में 'लैंग्वेज ऑफ़ द कोर्ट' वाले अनुच्छेद में फूकन बाङ्ला जैसी अन्य प्रान्तीय भाषा को कचहरी में और शासक और शासित के बीच की भाषा बनाने से उत्पन्न असुविधाओं की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि यह भाषा न तो विजेताओं, अंग्रेज़ों की है और न विजितों की, न मजिस्ट्रेट और जजों की और न मुद्दई और मुद्दालेह या मुलज़िम की, न अधिकारी की और न प्रार्थी जन की। इस भाषा के अर्थात् बाङ्ला के विपरीत वे असम प्रदेश में असमी भाषा के प्रयोग से उत्पन्न लाभों की ओर संकेत करते हैं। वे अपने तर्कों को 1837 में

पास हुए 29वें अधिनियम की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत हुए सरकारी आदेशों पर आधारित करते हैं। इन आदेशों के अनुसार सरकार ने बंगाल और हिन्दुस्तान के न्यायालयों से फ़ारसी को हटाकर उसके स्थान पर बाङ्ला और हिन्दुस्तानी भाषाओं को प्रान्तों में अधिष्ठित किया। यह व्यवस्था की गयी कि खुली अदालत में उपस्थित होनेवाले प्रत्येक साक्षी के मुँह से जो बयान लिया जाएगा उसे बाङ्ला, फ़ारसी अथवा नागरी लिपि में, साक्षी की इच्छानुसार लिखा जाएगा। उड़ीसा प्रान्त में भी स्थानीय भाषा उड़िया को, जिसका सम्बन्ध बाङ्ला से ठीक वैसा ही है जैसाकि असमी का बाङ्ला से, जिसे कि सरकारी भाषा बनाया गया। किन्तु, असमी भाषा को, जिसका प्रयोग पिछले पन्द्रह साल से बड़ी सरलता, सुविधा और सार्वजनिक सन्तोष के साथ प्रत्येक सरकारी विभाग में हो रहा है उसे उसके वैध पद से विस्थापित किया जा रहा है।

अपने सामने रखे गये सभी प्रमाणों के अवलोकन के पश्चात् मिल्स को इन वर्नाकुलर स्कूलों की अलोकप्रियता के वास्तविक कारण का पता चला। उन्होंने लिखा :

> "स्थानीय बोली असमिया के स्थान पर बाङ्ला के प्रयोग के विरुद्ध लोग शिकायतें करते हैं और इन शिकायतों में काफ़ी तथ्य है। बाङ्ला भाषा न्यायालयों की भाषा है, केवल लोकप्रिय पुस्तकों और शास्त्रों की नहीं। बाङ्ला के सामान्य प्रयोग के विरुद्ध यहाँ के लोगों मे प्रबल पूर्वाग्रह है। यह पूर्वाग्रह इसलिए है कि युवकों को केवल एक ही अन्य-प्रान्तीय भाषा में शिक्षा दी जाती है और इस वजह से उन्हें नौकरी के लिए केवल सरकार पर आश्रित रहना पड़ता है। प्रान्त के असमी-भाषा के सर्वश्रेष्ठ विद्वान श्रीयुत बाउन ने असमी-भाषा को सुन्दर और सरल भाषा माना है जो बाङ्ला भाषा से मिलने की बजाए अनेक दृष्टियों से भिन्न है। इनमें समानता बहुत कम है। मैं समझता हूँ हमने ग़लती की जब निर्देश दिये कि व्यापार का सारा काम बाङ्ला में होना चाहिए, और असमी जनता बाङ्ला को अवश्य स्वीकार करे।"

फूकन ने निम्नलिखित क़दम उठाने के सुझाव दिये :

"बाङ्ला भाषा के स्थान पर स्कूलों में असमिया-भाषा को रखा जाए। इस भाषा में देशीय और योरोपीय ज्ञान की विभिन्न शाखाओं को अनूदित करके लोकप्रिय पुस्तकों की माला प्रकाशित की जाए। अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए एक नॉर्मल स्कूल की स्थापना की जाए एवं 'वर्नाकुलर' स्कूलों में संस्कृत विभाग खोला जाए (ऑब्जरवेशन्स, पृ. 40-41)। फूकन बाङ्ला के महत्त्व से परिचित थे जिसे वे उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में रखना चाहते थे। मिल्स ने अपनी सिफ़ारिशों में फूकन के सुझावों को स्वीकार किया। उन्होंने लिखा :

> "मैं आनंदराम फूकन के प्रस्तावों की शिक्षा परिषद् से अनुग्रह पूर्वक विचार करने की सिफ़ारिश करता हूँ। ये प्रस्ताव हैं :
>
> बाङ्ला के स्थान पर असमिया-भाषा को प्रतिस्थापित करना, लोकप्रिय रचनाओं की एक पुस्तक माला को असमिया भाषा में प्रकाशित कराना एवं देशी भाषा में अर्थात् असमिया में बाङ्ला के पाठ्यक्रम को पूरा करवाना, मैं इस बात का कायल हो चुका हूँ कि एक युवक इस शिक्षा-पद्धति में दो साल में ही चार साल के प्राप्य ज्ञान से भी अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। एक अंग्रेज युवक को, जब तक वह अंग्रेज़ी का आधार हल नहीं कर लेता, लैटिन नहीं सिखायी जाती। इसी प्रकार एक असमवासी युवक को जब तक वह अपनी मातृभाषा अच्छी तरह नहीं जान लेता तब तक उसे भी विदेशी भाषा नहीं सिखानी चाहिए। यह एक दुःखद बात थी कि न तो सरकार ने और न ही शिक्षा समिति ने यह उचित समझा कि संस्तुतियाँ स्वीकार की जाएँ ताकि परिवर्तन तुरन्त लागू किए जायें और इस तरह यह मामला ऐसे ही टल गया और कलकत्ता में भुला दिया गया।"

बारह

ए. जे. मोफैट मिल्स ने 1853 में 'रिपोर्ट ऑन् द प्रॉविन्स ऑफ़ आसाम' तैयार की जोकि 1854 में प्रकाशित हुई। इसके मूल कलेवर के साथ 'जे' परिशिष्ट था। यह फूकन रचित 'ऑब्जरवेशन्स ऑन् द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ द प्रॉविन्स ऑफ़ आसाम' तीस फुल स्केप साइज़ पृष्ठों की कृति थी। इसमें शिक्षा, न्यायालयीन भाषा और स्कूली शिक्षा के माध्यम के अतिरिक्त प्रशासन के विभिन्न पक्षों का विवेचन भी था। इस प्रकार उनकी परिशिष्ट का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। फूकन ने तत्कालीन परिस्थिति को सर्वांगपूर्ण और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा और अपने सुझाव बड़े स्पष्ट और बेधड़क रूप से रखे। यह बात

उल्लेखनीय है कि वे प्रत्येक विषय पर इतना अधिक और इतना ज्ञानपूर्ण कह सके। उनका प्रशासनिक अनुभव संक्षिप्त, किन्तु गहन था। उनका अध्ययन विशाल और चिन्तन निशद था। उनको अपने विवेच्य विषय से अद्‌भुत प्यार था एवं उनकी संवेदनाएँ विस्तृत थीं। उनका भाषा पर बहुत अधिकार था। वे अंग्रेजी में अपने को इतनी स्पष्टता, संक्षिप्तता और प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त कर सकते थे मानों अपनी मातृभाषा में लिख रहे हों। कभी-कभी उनकी आलोचना प्रचण्ड हो उठती थी क्योंकि वे निर्भीक और पक्षपात-रहित होकर बोलते थे। हमने जैसा देखा, वे क़ानूनी पुस्तकों के लेखक थे और उनका मस्तिष्क विवेचनात्मक था। न्यायिक, वित्तीय एवं अन्य प्रकार के विषयों का उनका विवेचन बहुत विस्तृत हुआ करता था—उससे भी अधिक जितना कि उनकी आयु के एक युवा सब-एसिस्टेंट से अपेक्षित था। अथवा उन विषयों की उपयुक्त जानकारी रखनेवाले की आशाओं का जितना ध्यान देते उससे भी अधिक बहुत-सी बातें, जो उन्होंने कहीं उन पर ध्यान नहीं दिया गया, किन्तु उनकी पुस्तक 'ऑब्ज़रवेशन्स···' एक ऐतिहासिक महत्त्व का प्रलेख है तथा उनके मन और मस्तिष्क के श्रेष्ठ गुणों का प्रमाण। इसमें तथ्यों का प्रभावपूर्ण ढंग से नियोजन है एवं सत्य को अनावृत करने वाले तर्कों को बड़े अकाट्य और ज़ोरदार ढंग से रखा है। इस कार्य में उनका आश्चर्यजनक रूप से व्यवस्थित एवं तर्कपूर्ण मस्तिष्क निरन्तर कार्य करता रहता था। 'ऑब्ज़र्वेशन्स···' में विचारित विषयों को गिनाना शायद यहाँ पर्याप्त होगा :

> "ब्रिटिश प्रशासन कहाँ तक अपने को लाभदायक सिद्ध कर सका, राजस्व व्यवस्था, निर्धारण की दरें, कृषि, विनिर्माण (औद्योगिक निर्माण), शिक्षा एवं विद्यालय, लोकनिर्माण, धार्मिक एवं धर्मार्थ निधि, अफ़ीम की खेती, जनसंख्या, मृत्युदर, चिकित्सा-विज्ञान एवं चिकित्सा शिक्षा संस्थान, क़ानून तंत्र, पुलिस एवं मुफ़स्सिल अदालतें, ग्राम-पुलिस, प्रक्रिया सम्बन्धी क़ानून, साक्षी सम्बन्धी क़ानून, शपथ, आज्ञप्ति (डिग्री) का निष्पादन, फ़ौजदारी मामलों में क्षतिपूर्ति, हिन्दू क़ानून व्यवस्था एवं विधिक-अभिमत (लीगल ओपीनियन्स) जज और वकील, न्यायालयों का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण, न्यायालयों की भाषा, दस्तावेजों का पंजीकरण, विवाहों का पंजीकरण आदि। उपर्युक्त विषयों की गिनती से स्पष्ट हो जाता है कि आनन्दराम जैसा असम देखना चाहते थे वह समृद्ध एवं प्रगतिशील आधुनिक शिक्षा धन और विज्ञान से युक्त, समुन्नत एवं यंत्रीकृत कृषि युक्त, उचित न्यायिक व्यवस्था से समुचित नागरिक अधिकारों का सुख उठानेवाला शोषक विहीन वित्तीय एवं उदार सामान्य प्रशासनिक व्यवस्था वाला। इस प्रकार के असम की परिकल्पना उन्होंने अपनी पुस्तक 'इंगलान्दर बिवरन' में की थी।[1]

तेरह

चूँकि आनंदराम फूकन की उपस्थापनाएँ 'ऑब्ज़रवेशन्स ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ द प्रोविन्स ऑफ असम' के रूप में 1853 में प्रस्तुत की गयी थीं, सरकार की असम के स्कूलों और अदालतों की भाषा सम्बन्धी नीति के पुनर्परीक्षण के आसार मुश्किल से नज़र आ रहे थे। स्वयं वे और असम में बैप्टिस्ट नेता बेचैन होने लगे थे, विशेषकर शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में ढेकियाल फूकन बिना विचलित हुए अपनी भूमिका का निर्वाह करने आगे आये, क्योंकि परिस्थिति को उनकी प्रतिभा की ज़रूरत थी। उन्होंने 'ए फ्यू रिमार्क ऑन् द असमीज़ लैंग्वेज एण्ड वर्नाकुलर एजुकेशन इन असम' शीर्षक पुस्तक 'ए नेटिव' (एक मूलवासी) के छद्म नाम से लिखी। यह उल्लेखनीय है कि यह पुस्तक शिवसागर मिशन प्रेस से छपी। यह फूकन की असमी भाषा को शिक्षा का योग्य माध्यम सिद्ध करने की पूरी वकालत है। यह पूर्णतया असमी भाषा के व्यक्तित्व की स्थापना करती है। (पुस्तक का सम्पूर्ण पाठ महेश्वर नियोग की पुस्तक 'आनंदराम ढेकियाल फूकन : प्ली फॉर असम एण्ड असमीज़', असम साहित्य सभा, जोरहाट, 1977 में उपलब्ध है)

वे असम प्रांत में शिक्षा के प्रचलित एवं तथाकथित सर्वोत्तम माध्यम के विषय में अपनी शंकाएँ प्रकट करते हुए उपनी बात आरम्भ करते हैं। वे सही निदान करते हैं कि 'इस माध्यम सम्बन्धी विवाद के मूल में बाङ्ला और असमी भाषा की अस्मिता के सम्बन्ध में गम्भीर भ्रान्तियाँ हैं।' इसलिए उनके तर्कों का सार इन भ्रान्तियों को निराकृत करना था जो असम प्रान्तवासियों को उनकी मातृभाषा को शिक्षालयों और न्यायालयों में प्रयोग से वंचित करके उनकी भावनाओं पर कुठाराघात कर रही थीं। इसलिए वे प्रस्तावित करते हैं कि इस बात की छानबीन की जाए कि असमी और बाङ्ला के बीच कोई मौलिक अन्तर है

1. द्रष्टव्य : महेश्वर नियोग की जीवनी 'आनन्द ढेकियाल फूकन : प्ली फार असम एण्ड असमीज़, आसाम साहित्य सभा, जोरहाट, 1977)

अथवा नहीं। बाङ्ला भाषा को स्कूलों और न्यायालयों में लागू करने के परिणामों की ओर संकेत करने के पश्चात् वे अपनी भाषा की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं और बताते हैं कि कहाँ तक यह सरकारी कामकाज और स्कूली शिक्षा के अनुकूल है।

बाङ्ला के समर्थक अपने तर्क इस प्रकार देते हैं—जो भाषा असम में बोली जाती है वह मूलतः वही है जो बंगाल में बोली जाती है। बंगाल की लिखित भाषा जो पिछले कई वर्षों से संस्कृत शब्दों को ग्रहण करने से परिष्कृत और मार्जित हो गयी है। वह बंगालियों के लिए असमवासियों से अधिक बोधगम्य नहीं है अर्थात् असमवासी भी उसे उतना ही समझ लेते हैं जितना कि बंगाली। दोनों प्रान्तों की बोलचाल की भाषा का अन्तर बंगाल के विभिन्न जिलों में बोली जानेवाली बोलियों से अधिक नहीं है। यह अन्तर केवल वर्तनी और उच्चारण का है। फूकन भाषाविद् नहीं थे किन्तु दोनों भाषाओं के अन्तर को समझने के लिए भाषा वैज्ञानिक होना जरूरी नहीं है। यह तो ऐसा तथ्य है जो साफ़ सामने आता है और हमारी समझ में स्पष्ट रूप से अकाट्य है। फिर भी वे इन त्रुटिपूर्ण धारणाओं पर सीधा प्रहार करते हैं। वे कहते हैं कि वे बंगाल की लिखित और बोलचाल की भाषा—दोनों प्रकार की भाषा से परिचित हैं। भाषा-विज्ञान की सैद्धान्तिक चर्चा छोड़कर वे पाठकों को वास्तविक तथ्यों का सामना करने का आह्वान करते थे।

(1) वे 'कविता-रत्नाकर' बाङ्ला और असमिया के सामान्य गद्यांश लेते हैं और इस बात को सिद्ध करते हैं कि असमिया के 247 शब्दों में 112 का बाङ्ला से कोई सम्बन्ध नहीं है। 92 शब्द संस्कृत से निष्पन्न हुए हैं जोकि दोनों भाषाओं का सामान्य स्रोत हैं। इनमें केवल 77 शब्द ऐसे हैं जो बाङ्ला भाषा से निष्पन्न हैं अथवा बाङ्ला-भाषा के शब्दों से मिलते हैं।

(2) फूकन ने प्रकृति में उपलब्ध सामान्य वस्तुओं के वाचक 114 असमी शब्दों की सूची बनायी जो दैनन्दिन जीवन से सम्बद्ध हैं और लगभग सभी देशों में प्रयुक्त होते हैं। इनमें से 90 शब्दों का बाङ्ला से कोई सम्बन्ध नहीं है (जोकि तुलनीय स्तम्भों में दिखाये भी गये है)। शेष शब्दों में से बहुत थोड़े शब्दों में तनिक साम्य है।

(3) वे बोलचाल की असमी और बाङ्ला भाषा का नमूना देते हैं (एक गद्यांश बाङ्ला मासिक पत्रिका के हवाले से) और दावा करते हैं कि यह सिद्ध कर देगा कि लिखित की अपेक्षा दोनों भाषाओं के उच्चरित स्वरूप या बोलचाल की भाषा में और भी अधिक अन्तर है और असम और बंगाल दोनों प्रान्तों की लिखित भाषा में दोनों की जननी संस्कृत के शब्द होने के कारण अनिवार्य रूप से अधिक साम्य है। इस उदाहरण द्वारा भिन्नता स्पष्ट करते हुए वे अपने पाठकों से पूछते

हैं—"हम अपने पाठकों पर यह निर्णय छोड़ते हैं कि ऊपर दिये गये उदाहरण के आधार पर असमी को, जिसमें कि आधे शब्द बाङ्ला से नितान्त भिन्न हैं उसे बाङ्ला के समान माना जाय या उससे भिन्न।"

(4) वे आगे कहते हैं, "भारत के भिन्न-भिन्न भागों में बोली जानेवाली लगभग सभी बोलियों का मूल संस्कृत मानी जा सकती है। इन बोलियों में संस्कृत शब्दों का बहुत बड़ा अनुपात है। ये संस्कृत शब्द या तो यथावत् ग्रहण किये गये हैं या परिवर्तन के साथ। कोई संस्कृत का ऐसा शब्द नहीं है जो बिना औचित्य के हिन्दुओं की बोलियों में प्रयुक्त न हो सके। इससे यह अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है कि इन बोलियों का कोई भी लेखक अथवा वक्ता यदि संस्कृत भाषा से बड़ी संख्या में शब्द लेता है तो वह सभी शिक्षित हिन्दुओं द्वारा समझा जाएगा। वे अपनी बात को संस्कृत के तत्सम शब्दों से भारान्वित एक बाङ्ला गद्यांश 'योगवासिष्ठ रामायण' से लेकर स्पष्ट करते हैं। वे तीन समानान्तर स्तम्भों में असमी, बाङ्ला और हिन्दी के सामान्य गद्यांश रखकर सिद्ध करते हैं कि यदि भारत की प्रमुख बोलियों में, जैसी कि वे शिक्षित वर्ग द्वारा लिखी अथवा बोली जाती हैं, तुलना की जाए तो वे एक-दूसरे से बहुत मिलती हुई पायी जाएँगी। उस गद्यांश-विशेष में वे यह दिखाते हैं कि तीनों भाषाओं में लगभग आधे शब्द सामान्य हैं एवं शेष शब्दों का बड़ा भाग एक-दूसरे से बहुत मिलता है। यह समानता यदि विभिन्न भाषाओं में एकता का प्रमाण मानी जाती है तो उन सभी भाषाओं को एक ही भाषा कहा जाना चाहिए। (पृष्ठ 23-27)

यहाँ पर वे एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं, जो आज भी विचार किये जाने योग्य है।

उनके विचार में जन सामान्य की समझ से ऊपर संस्कृत के अनुरूप परिष्कृत और उच्च भाषा के माध्यम से नहीं अपितु सामान्य बोलचाल की भाषा के माध्यम से जोकि सभी वर्गों द्वारा समझी और बोली जाती है, हमें लोगों को शिक्षित करना चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखते हुए फूकन ने अपने पाठों को 1849 में प्रकाशित 'असमिया लरार मित्र' नामक पुस्तक में संकलित किया।

(5) फूकन आगे स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार बंगाली सरकारी स्कूलों और न्यायालयों की भाषा के रूप में ग्रहण किये जाने के बावजूद बिलकुल असफल सिद्ध हुई और किस प्रकार इस माध्यम से दी गयी शिक्षा तमाशा बनकर रह गयी जबकि बंगाल एवं अन्य प्रान्तों को उनकी अपनी ही मातृभाषा में पढ़ने-लिखने एवं आधुनिक योरोप के विज्ञान एवं साहित्य की प्रत्येक शाखा से ज्ञान प्राप्ति का वरदान मिला। उन्होंने लक्ष्य किया कि उत्तरी भारत और बंगाल में जैसे लॉर्ड हेस्टिंग्स ने प्राच्य-विद्या का पुनरुत्थान किया उसी प्रकार असम में ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक दिनों में अध्ययन के लिए प्राचीन पाठशालाओं को सुरक्षित रखा

गया । किन्तु, जहाँ उन प्रान्तों में योरोपीय शिक्षा को प्राच्य-विद्या के ऊपर वरीयता दी गयी, असम में बाङ्ला के अधकचरे ज्ञान ने देशीय भाषा ज्ञान को उखाड़ फेंका और संस्कृत की उत्कृष्ट शिक्षा-पद्धति को नष्ट कर दिया। उसके स्थान पर संस्कृत पाठशालाओं के अवशेष अपने निर्धन पण्डितों के साथ बच रहे।

(6) फूकन इस तर्क पर बल देते हुए उस स्थापना को उखाड़ फेंकते हैं कि असमी भाषा एक 'अशिष्ट और गँवार' बोली है जो उच्च-सूक्ष्म विचारों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ है तथा जिसका अपना कोई साहित्य नहीं है। वे 'नेचुरल फिलॉसफ़ी' नामक पुस्तक के 'फ़ॉली आफ़ एंगर' नामक निबन्ध का एक उद्धरण प्रस्तुत करते हैं, जो 'द रेम्बलर' में 24 अप्रैल 1750 को छपा था। इस लेख का वे असमिया में अनुवाद करते हैं। साथ ही, 5 मार्च 1850 सदर दीवानी अदालत में एक फ़ैसले (140-144) का भी अनुवाद करते हैं और पूरा विश्वास व्यक्त करते हैं कि इन दोनों अनुवादों में उन्होंने मूल लेखक के अभिप्राय और अर्थ को असमी-पाठक के लिए पूर्ण रूप से ग़लत समझे जाने के भय के बिना अभिव्यक्त कर दिया। अपने तर्क का विस्तार करते हुए वे कहते हैं, "असमी और बाङ्ला दोनों ही संस्कृत से विकसित हुई हैं जो विश्व की समृद्धतम भाषाओं में से हैं और असमी भी बाङ्ला के समान संस्कृत शब्द-संभार से शब्द ले सकती है। इसलिए बाङ्ला असमी भाषा से रत्ती-भर भी अधिक समृद्ध नहीं है। असमी में विचार व्यक्त करने में यत्किंचित् भी असुविधा नहीं होती चाहे वह धर्म सम्बन्धी हो चाहे विधि सम्बन्धी, दर्शन सम्बन्धी हो अथवा विज्ञान सम्बन्धी।" फूकन फिर डॉ. विलियम कैरी को यह बताने के लिए उद्धृत करते हैं कि किस प्रकार बाङ्ला के विषय में भी एक दिन लोगों को इसी प्रकार की ग़लत धारणा थी जिसको बड़े श्रम के साथ दूर करना पड़ा। बाङ्ला भी सिरामपुर के मिशनरियों, राजा राममोहन राय एवं आधुनिक शिक्षा प्राप्त सज्जनों द्वारा अपने इस आधुनिक रूप में ढाली गयी है। (पृष्ठ 41-42)

(7) यह कहने का साहस करते हुए कि असम का साहित्य 1800 में बाङ्ला साहित्य से कहीं अधिक व्यापक और विविध था, फूकन ने इस अज्ञानपूर्ण कथन का भी खण्डन किया कि असमी का अपना कोई सुव्यक्त साहित्य नहीं था। वे असम के साहित्य के इतिहास की ओर संकेत करते हैं तथा राजा राममोहन राय और सिरामपुर के मिशनरियों द्वारा आधुनिक युग में विकसित बाङ्ला गद्य की तुलना में असम के सोलहवीं सदी जैसे पुराने गद्य का हवाला देते हैं जिसका श्रेष्ठ होने का दावा अधिक है। वे निम्नलिखित वर्गों की असमी पुस्तकों की एक बड़ी कारगर सूची बनाते हैं—

(क) हिन्दू धार्मिक पुस्तकें
(ख) इतिहास

(ग) आयुर्वेद
(घ) नाटक
(ङ) गणित
(च) भूगोल
(छ) शब्द कोश
(ज) विधि अथवा क़ानून
(झ) विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तकें।

वे असम में अमरीकन बैप्टिस्ट मिशनरियों और सिरामपुर के मिशनरियों द्वारा प्रकाशित असमिया रचनाओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं। आनंदराम फूकन से उनकी पुस्तक 'ए फ़्यू रिमार्क···' में असमी साहित्य के ऐतिहासिक विवरण की अपेक्षा करना उनके समय के लिए बहुत जल्दी होगा। वे शंकरदेव-पूर्व साहित्यिक-काल के बारे में लिखने से चूक जाते हैं और शंकरदेव और माधवदेव, राम सरस्वती और अनन्त कुण्डली को असमी भाषा के प्रारम्भिक लेखक मान बैठते हैं। वे शंकरदेव और माधवदेव को एक ही व्यक्ति मान लेते हैं। यह भ्रान्ति वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक तक बनी रही। उनके हिसाब से इस सूची अथवा केटलॉग की धार्मिक रचनाओं का वृहद् अंश इन्हीं के द्वारा लिखा गया है। वे शंकरदेव के परवर्ती काल के कतिपय लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण कवियों और उनकी काव्य-पुस्तकों के नाम बतलाते हैं। उनकी प्राचीन नाटकों की सूची जोकि शंकरदेव के छः और माधवदेव के चार नाटकों से आरम्भ होती है। मध्यकालीन असमिया नाटकों के इतिहास में काफ़ी महत्त्व रखती है। फूकन ने 'बुरंजियों' के इतिहास के बारे में जो लिखा है वह इतने अच्छे ढंग से लिखा है कि सर जार्ज ए. ग्रियर्सन और डॉ. एस. के. भूयान ने उनके शब्दों की यथावत् पुनरावृत्ति की है।

आनंदराम फूकन के पिता हलिराम फूकन की बंगाली रचना 'बुरंजी इतिहास का सार-संग्रह', काशी राम फूकन की ऐसी ही असमी रचना जो शिवसागर बैप्टिस्ट मिशन प्रेस (1844) से मुद्रित और प्रकाशित हुई तथा 'कामरूपर बुरंजी' जो 'ओरुनुदोइ' में छपी और बाद में डॉ. भूयान् द्वारा पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई, सूची की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। ढेकियाल फूकन की तब तक मुद्रित और प्रकाशित आधुनिक कृतियों की सूची का विशेष ऐतिहासिक महत्त्व है। उनके शब्दों के अनुसार "1813 में, एक असमिया पण्डित आत्माराम शर्मा की सहायता से सिरामपुर मिशनरियों द्वारा पूरी बाइबिल अनूदित और प्रकाशित हुई। इसका दूसरा संस्करण 1833 में सिरामपुर प्रेस से प्रकाशित हुआ। सिरामपुर द्वारा दो अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशित रचनाएँ रोबिन्सन और राये द्वारा पुनरीक्षित 'सैंट ल्यूक गोस्थल' और रोबिन्सन का 'असमी भाषा का व्याकरण' था। (1839) जिसके

साल भर पहले अमेरिकन बैप्टिस्ट नैथन ब्राउन ने ग्रैमेटिकल नोट्स ऑफ़ द असमीज़ लैंग्वेज" 1838 लिखी। फूकन के जदुराम बरुआ की बाङ्ला और असमी कोश के उल्लेख को पढ़कर हमारे हृदय में एक गंभीर खेद की भावना जन्म लेती है। यह कोश एक वृहत् कार्य था जिसमें कि सभी असमिया शब्दों को होना चाहिए था। यह ग्रन्थ आगामी पीढ़ियों के लिए लुप्त हो गया। स्वयं फूकन का 'अंग्रेजी-असमी' और 'असमी-अंग्रेजी' शब्द कोश भी आजकल हम लोगों को उपलब्ध नहीं। उसके केवल कुछ पृष्ठ 'ओरुनुदोइ' में मिलते है। असमी भाषा में उनका साहित्यिक कृतित्व बहुत सीमित था—केवल एक निबन्ध 'इंगलान्दर बिबरन' था जो 'ओरुनुदोई' और 'असमिया लरार मित्र' में छपा था। समकालीन प्रकाशनों की ढेकियाल फूकन की सूची बहुत विस्तृत थी—यहाँ तक कि बनयन की अंग्रेजी 'पिलिग्रिम्स प्रोग्रेस' और बाङ्ला की 'फूलमणि और करुणा' के अतिरिक्त यह सचमुच कौतूहल की बात है कि आसाम कोड' के बाङ्ला अनुवाद जैसी रचनाएँ भी उसमें थीं।

प्राचीन असमी साहित्य के सन्दर्भ में ढेकियाल फूकन कहते है कि ऐसी बहुत-सी पुस्तकें बिखरी पड़ी हैं, जो उन तक नहीं पहुँची। बर्मी-युद्ध तथा 'मोआमारिया' विद्रोह के कारण हुई आन्तरिक उथल-पुथल में बहुत-सी हस्तलिखित पुस्तकें नष्ट हो गयीं।

वे दृढ़तापूर्वक दावा करते हैं कि उपर्युक्त पुस्तकों की सूची, चाहे जितनी छोटी हो, इस बात का खंडन करती हैं कि असमी-भाषा का अपना कोई सुनिश्चित साहित्य नहीं था। इतनी व्यापक विविधता को समेटनेवाली असमी पुस्तकों की इस सूची को ध्यान में रखते हुए क्या हम यह कह सकते हैं कि असमी भाषा इंगलैंड की यॉर्कशायर अथवा बिल्टशायर की बोलियों के समान एक आंचलिक बोली मात्र है और यह जन सामान्य में ज्ञान सम्प्रेषित करने का एक अयोग्य अथवा असमर्थ माध्यम है। (पृ. 42-51)

हमारा विश्वास है कि फूकन बिना शब्द जाल और भाषा वैज्ञानिक पद्धति के असमी भाषा की अपनी अलग इयत्ता और अस्मिता को तथा उसकी बाङ्ला भाषा से भिन्नता को पहली बार स्पष्ट कर सके।

परवर्ती विद्वानों में जॉर्ज अब्राहिम ग्रियर्सन थे जिन्होंने बाङ्ला और असमी भाषा में अन्तर को रेखांकित करने के लिए एक पहाड़ और छोटी-सी पहाड़ी की तुलना का उपयोग किया और दूसरे बानीकान्त काकती थे जिन्होंने भाषा के ऐतिहासिक-तुलनात्मक व्याकरण द्वारा दोनों भाषाओं की स्वतंत्र पहचान एवं अन्तर को और भी अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

बाङ्ला की विकसित अवस्था असम में ही असमी को विस्थापित कर देने का कारण नहीं बन सकती। फूकन असमी साहित्य के विकास को अवरुद्ध करने

वाले कारणों का विश्लेषण करते हैं। वे 1835 में गौहाटी में स्थापित अंग्रेजी स्कूल का उदाहरण देते हैं जोकि चल न पाया। उसकी असफलता का कारण असमी युवकों में उत्साह की कमी नहीं थी जैसाकि सरकार मानती थी बल्कि स्पष्टतः शिक्षण की ग़लत पद्धति थी।

वे असमी लोगों की योरोपीय साहित्य और विज्ञान की शिक्षा को ही भारतीय साहित्य और ज्ञान की शाखाओं को आधुनिक विकास के पथ पर ले जाने-वाला ठहराते थे।

वे शिक्षा प्रणाली के सुधार के लिए विभिन्न सुझाव देते है।

अन्त में वे असमी भाषा में स्कूल की पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने में अमरीकी मिशनरियों की चर्चा करते हैं और इसके साथ 'असमिया लरार मित्र' के धारा-वाहिक प्रकाशन द्वारा इस दिशा में किये गये अपने प्रयत्नों की ओर भी संकेत करते हैं (पृ. 52-58)।

चौदह

" 'अंग्रेजी-असमी' और 'असमी-अंग्रेजी' शब्द कोश 'फ्रेण्ड ऑफ यंग असम' के संकलनकर्ता द्वारा प्रेस के लिए तैयारी में है"—यह घोषणा 'एक मूलवासी' ने अपनी पुस्तक 'ए फ़्यू रिमार्क्स ऑन् असमीज़ लैंग्वेज' में की थी।

हमने देखा कि किस प्रकार जब आनंदराम फूकन अपने 'अभिधान' की रचना कर रहे थे तब उसके लिए कप्तान बटलर नवगाँव में अग्रिम माँग (ऑर्डर) एकत्रित कर रहे थे। दिसम्बर 1856 के 'ओरुनुदोइ' के ग्यारहवें अंक (पृ. 181-182) के चार स्तम्भों में आगामी 'अंग्रेज़ी-असमिया शब्दकोश' का नमूना दिया गया (अंग्रेजी अरु असमियायी अभिधान अलापाते चपोआ हवा, तारे अहि) जिसके शीर्षक के नीचे अंग्रेजी और असमिया में लिखा था—'असमिया' विद्वानों से वर्तनी के लिए अपनायी गयी पद्धति तथा दी गयी परिभाषाओं के विषय में सुझाव अथवा टिप्पणियाँ सादर आमंत्रित हैं।'

असमी में लिखी सम्पादकीय टिप्पणी में जोकि नमूने के रूप में दिये चार स्तम्भों से ठीक पहले दी गयी थी (140वाँ पृष्ठ) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री थी। इसमें लिखा था, "आजकल असमिया लड़के अंग्रेजी पढ़ने पर बहुत ध्यान दे रहे हैं।

शिवसागर और गौहाटी ज़िलों में अच्छे स्कूल खोले गये हैं जिनमें अत्यन्त सुयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति हुई है। किन्तु विद्यार्थियों के पास अंग्रेजी से अपनी भाषा में कोई भी शब्दकोश नहीं है—इसलिए छात्रों के लिए अंग्रेजी पढ़ना कठिन हो रहा है। यह सही है कि अंग्रेजी-बाङ्ला शब्दकोश हैं किन्तु उनके माध्यम से अंग्रेजी सीखना कठिन है क्योंकि विद्यार्थी यदि पहले बाङ्ला का ज्ञान अच्छी तरह से प्राप्त नहीं करता तो वह उसके माध्यम से अच्छी तरह से अंग्रेजी भी नहीं सीख सकता। कुछ अंग्रेज लोगों ने हमें पत्र लिखे हैं जिनमें उन्होंने 'अंग्रेजी-असमिया शब्दकोश' की माँग की है। किन्तु इस प्रकार के कोश बिलकुल ही नहीं छपे जोकि इन लोगों को दिये जा सकें। इसलिए इन दोनों प्रकार के लोगों के फ़ायदे के लिए श्रीयुत आनंदराम ढेकियाल फूकन ने 'अंग्रेजी-असमी' और 'असमी-अंग्रेजी' के दो खण्ड लिखे हैं। उन्होंने हमें एक पत्र लिखा है जिसमें लोगों के देखने के लिए नमूने के तौर पर कुछ पृष्ठ 'ओरुनुदोइ' नामक पत्रिका में छापने की प्रार्थना की है। यह सच है कि अभिधान की वर्तनी हमारी वर्तनियों से थोड़ी भिन्न है फिर भी यह असमिया भाषा का अभिधान होगा। यदि ईश्वर की कृपा से यह छप जाता है तो इससे लोग बड़े लाभान्वित होंगे।"

इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि यह मूलतः शब्दकोश अंग्रेजी भाषी एवं स्कूल जानेवाले बच्चों के लिए लिखा गया। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किसी सीमा तक फूकन की वर्तनी-प्रणाली 'ओरुनुदोइ' की सरलीकृत वर्तनी-प्रणाली से भिन्न है जो डॉ. नैथन ब्राउन के 'लिखित वर्तनी का उच्चरित शब्द में पूरी तरह से प्रतिबिंबन' सिद्धान्त पर आश्रित है। इस बात पर स्थानीय हलक़ों के ज़ोरदार हमलों के बावजूद ये मिशनरी लोग बड़े जोश के साथ डटे रहे। श्री हेमचन्द्र बरुआ, दो कोशों के 'हेमकोश' उनके मरणोपरान्त 1900 में प्रकाशित और 'पढ़ासालीय अभिधान' (1892 में प्रकाशित), दो व्याकरणों (असमिया व्याकरण, 1859 तथा असमिया लरार व्याकरण, 1886) एवं पहली महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक असमी पुस्तक-माला के प्रणेता थे—असमिया की आधुनिक वर्तनी, शब्द संरचना एवं व्याकरण के प्रवर्तक थे।

आपने अपने आत्म-कथात्मक निबन्ध में बताया कि इन मिशनरियों के 'लेखन-शैली-सम्प्रदाय' के विरुद्ध आपको कितना घोर संघर्ष करना पड़ा, विशेषकर प्रथम असमी ईसाई निधि लेबी फ़ेयरवेल के खिलाफ़ जोकि अपने गुरु ब्राउन के सिद्धान्तों से एक इंच भी नहीं हटते थे। उपर्युक्त सम्पादकीय टिप्पणी फूकन के शब्दकोश के नमूने (जोकि 'ओरुनुदोइ' के पृष्ठों पर उद्धृत है) और 'ए फ्यू रिमार्क···' के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि वर्तनी के सम्बन्ध में फूकन ने हेमचन्द्र बरुआ और 'ओरुनुदोइ' के मध्य के मार्ग का अनुसरण किया।

हम जानते हैं कि किस प्रकार फूकन जॉनसन के शब्दकोश की एक-एक पंक्ति

रोज़ पढ़ा करते थे और उसके कुछ पृष्ठों को कंठस्थ कर लिया करते थे। उनका यह गहरा अध्ययन अंग्रेजी-असमिया शब्दकोश की रचना करने में बड़ा काम आया। अंग्रेज़ी शब्दों की असमी भाषा में जो परिभाषाएँ वे देते थे वे बहुत स्पष्ट और सरल होती थीं। वे इन परिभाषाओं को असम का स्थानीय एवं घरेलू रंग प्रदान करते थे जिससे पाठक तत्कालीन असमी परिदृश्य के प्रति जागरूक हो सकें। दिसम्बर 1856 में छपी 'ओरुनुदोइ' से हम कुछ शब्दों को उनकी असमिया व्याख्या सहित यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। ये उनकी वर्तनी-प्रणाली का रूप भी स्पष्ट करेंगे।

एबेकस, एस = खेलर नाइबा अंक बा शकर
ढाल अंका फलिर निचिना
पाट्; इटार सिलर थुपर गुर बा मथायरि
बा ओपार डोखर पकि धरार इटार बा सिलार
खुँटार गुर।

एबाप्ट, एड. = पिछच फाले, पिचपिने, जाहपरा टिगर बा माजर
मस्तुलर एहलांइ।

एबण्डन, परि. ए. = एरा त्यागा, बीच, आगलइ भाल हबार आगन्तुक
नाकियकई, नीच, दुष्ट, दुर्जन
अजामिल, खटासुर।

एबेश ब. ए. = लाजकरा, लघुकरा से मेना से मे. नि. करा
चुन्दुरिया पेलोआ।

एबेट ब. एन = अलपकरा टुटुआ ताक बोया कमिकरा, कमकरा।

अब्बर, एस = चिरिया भाषा माते पिता बा बोपाइ

एब्बेसी, एस = रोमन कैथोलिक धर्मर केयलिया भकतर सत्रर
अधिकाटिर बाव मरजात
आरु तेओर सत्रह तलर ब्रित्तिको बुझाइ

एब्बेस. एस = ओपरत लेखा सत्रह तिबोटा अधिकारी बा गराकी।

एबे, एस = रोमन कैथोलिक धर्मर सत्रायत
दुआसीन भकत भकतनी सकबे थोक

एब्बट, एस = ओपरत लेखा सत्रर अधिकारी

एब्डबट, एस = भुरिकिअइ चलकइ उलमुलाइ बा
बुद्धि सिकायिनिया विसेसकइ लोकदा
तिरोताक तेनेकइ नियाक बुजाइ, टनि नियां।

एबेरेण्ट, ए = अबाटे जाओता बा जति करोता

एबेटर, एस =सहाय भजोता बा हाओता अकार्य करिबलाइ उचताइ दियोता।

एबइन्स्टेट, ए =विल फकर नकराकइ मरा

एबजेक्ट, ए =सामान्य से माइन मजति न थाका, अमरजतालि, खेंच अधम, हीन नीच, नीहकिन

एबज्युरेशन, एस =एरा सपत खाइ एटा ओंगीकारा बा शपत कइ आशइ कहाँ बा आसइ मता

एब्लेटिव, एस =अपादान बा, पंचमी कारक कोवा बस्तुर परा लेइजोरा।

एबलोकेट, बी. ए. =भेरो दिया बा भेरो नलइ लागोया बादिया।

एब्ल्युशन, एस =स्नान, गा धोया, धुति होया।

'ओरुनुदोई' में प्रकाशित यह नमूना निकल ही रहा था कि उसके सम्पादक एस. एम. ह्वाइटिंग ने पत्रिका के अपने वर्तनी नियमों को ढील देनी शुरू कर दी। शुरू में उन्होंने लेख देनेवालों को अपने हिसाब से लिखने की अनुमति दी। कुछ ही वर्षों में 'ओरुनुदोई' ने अपनी वर्तनी प्रणाली छोड़कर हेमचन्द्र बरुआ की प्रणाली को ग्रहण कर लिया। पत्रिका का नाम 'ओरुनुदोई' से बदलकर 'अरुणोदय' हो गया। यह हेमचन्द्र बरुआ की विजय थी, जो इस वर्तनी प्रणाली के प्रमुख अधिवक्ता और अपने आप में एक पूर्ण संस्थान थे। किन्तु आनन्दराम फूकन को भी इसके लिए उचित श्रेय मिलना चाहिए। यह बड़े खेद का विषय है कि उनके ये कोश-युगल प्रकाशित नहीं हो पाये। और 1839 में रचे गये जदुराम बरुआ के कोश के समान आनेवाली पीढ़ियों के लिए लुप्त हो गये। जदुराम का कोश कमिश्नर जेनकिन्स को समर्पित किया गया था, जिसे उन्होंने मिशनरियों को प्रदान कर दिया। वहाँ से वह कहाँ गया, इसका पता नहीं।

पन्द्रह

फूकन ने अपनी पुस्तक 'ऑब्जरवेशन्स ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ प्रॉविन्स ऑफ़ असम' मिल्स को जुलाई 1853 में प्रस्तुत की जो 'रिपोर्ट ऑन द प्रॉविन्स ऑफ़ असम' के साथ अनुलग्न के रूप में छपी। उनकी पुस्तक 'ए फ्यू रिमार्क ऑन द असमीज़ लैंग्वेज एण्ड वर्नाकुलर एजुकेशन इन असम' 1855 में प्रकाशित हुई। फूकन का देहान्त 1859 में हुआ। किन्तु तब तक इस बात के कोई आसार नहीं थे कि सरकार अपनी शिक्षा नीति अथवा क़ानून सम्बन्धी कार्य विधि में कोई संशोधन करेगी।

हाल ही में खोजे गये 'ब्रोन्सन पेपर्स' (ब्रोन्सन के काग़ज़ात) से पता चला कि गौहाटी स्कूल के प्रधान अध्यापक तथा बाद में आसाम के स्कूलों के निरीक्षक विलियम रोबिन्सन द्वारा सुझाये गये शिक्षा नीति और न्यायिक प्रक्रिया सम्बन्धी चिर-प्रतीक्षित सुधारों को दो दशकों तक रोके रखने से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध था और डॉ. ब्रोन्सन को बंगाल सरकार से अपने अप्रतिहत पत्र-व्यवहार द्वारा, जिसमें कि उन्होंने असमी भाषा की वकालत की थी—असमी भाषा की ओर से लड़ाई लड़नी पड़ी।

फूकन चले गये किन्तु डॉ. ब्रोन्सन एवं एम डेन फ़ोर्थ एवं अन्य असमी भाषा के उत्साही समर्थक अपनी असमी को उसका उचित स्थान दिलाने के लिए लगातार आन्दोलन करते गये। 19 अप्रैल, 1873 में इस संघर्ष के अन्तिम निर्णायक दौर में बंगाल सरकार के कार्यवाहक सचिव सी. बर्नार्ड ने लिखा—"जब से 1853 में मिस्टर मिल्स और आनंदराम फूकन ने असमी को न्यायालय की भाषा बनाने के विषय में लिखा तब से ही इस भाषा को मान्यता प्रदान करवाने के लिए समय-समय पर आन्दोलन होते रहे हैं। मिशनरी और स्थानीय स्कूलों ने असमी भाषा का शिक्षण जारी रखा। एक अथवा एकाधिक देशीय समाचार-पत्र, जो अपने को असमी कहते हैं, प्रकाशित हो रहे हैं। भूतपूर्व कार्यवाहक कमिश्नर कर्नल हटन ने औपचारिक रूप से सिफ़ारिश की कि असमी को न्यायालयों की भाषा बनाना चाहिए।" इन सिफ़ारिशों का बंगाल सरकार द्वारा अनुमोदन नहीं किया गया किन्तु इसी बीच में जिस प्रकार बंगाली अफ़सरों को बाङ्ला और उत्तर-पश्चिम प्रान्तों को हिन्दुस्तानी की परीक्षा पास करनी पड़ती थी उसी प्रकार असम के सभी सार्वजनिक सेवा के अधिकारियों को असमी भाषा परीक्षा पास करने के लिए बाध्य किया गया। उसी काल में असम के विभिन्न भागों से इस विषय पर लेफ़्टिनेंट गवर्नर को अनुस्मारक दिये गये। स्वयं लेफ़्टिनेंट गवर्नर ने विचार व्यक्त किये कि लोगों की देशीय भाषा को अन्य पड़ोसी भाषा के समर्थन

में बहिष्कृत नहीं करना चाहिए चाहे उसके बोलनेवाले कितने ही अधिक शिक्षित और बहुसंख्यक क्यों न हों ! धीरे-धीरे हिन्दुस्तान सरकार एवं विधान की प्रवृत्ति प्रान्तीय अदालतों में देशीय भाषाओं के प्रयोग की छूट देने की होती गयी। उन कुछ वर्षों के तथ्यों और अनुस्मारकों ने दिखा दिया कि 'असमी अब भी असम प्रान्त की जनभाषा है'। इसके अनुसार ही, लेफ्टिनेंट गवर्नर सर जार्ज कैम्पबेल ने असम के कमिश्नर द्वारा इस बात की पूरी जाँच करवायी। उन्होंने अन्य बातों के साथ विशेष एवं प्रमुख रूप से असमी भाषा के शब्द कोश की ओर संकेत किया। जो स्पष्टतः रेवरेण्ड ब्रोन्सन (1867) का शब्द कोश था। इसके आरम्भ में अंग्रेज़ी और असमी भाषाओं की आकर्षक भूमिकाएँ थीं। असम के कमिश्नर ने जो स्वयं बाङ्ला भाषा को असम के स्कूलों और न्यायालयों में बनाये रखने के पक्ष में थे, सभी डिप्टी कमिश्नरों एवं असम घाटी के जिलों के अन्तर्गत तमाम उपक्षेत्रीय पदाधिकारियों के क्षेत्र-प्रतिवेदनों को कलकत्ते में लेफ्टिनेंट गवर्नर के पास भेजा गया। इन रिपोर्टों से लेफ्टिनेंट गवर्नर को पता चला कि इन प्रान्त के अनुभवी अधिकारी स्थानीय भाषा असमिया को स्कूल और कोर्ट की भाषा बनाने के पक्ष में थे। लेफ्टिनेंट गवर्नर इस अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुँचे कि असम की जनता बाङ्ला भाषा को नहीं समझती और उनके नाम से लिखी हुई याचिकाएँ एवं अदालतों में होनेवाली कार्यवाही उनके लिए अबोध-गम्य है। उनका आन्दोलन यह सिद्ध करता है कि असमवासियों की बहुत बड़ी संख्या की यह उत्कट अभिलाषा है कि उनकी अपनी भाषा ही शिक्षा संस्थानों और न्यायालयों की भाषा बने।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सत्ताधारी तब तक नहीं हिले जब तक भाषा के लिए लोकप्रिय आन्दोलन आरम्भ नहीं हो गया। इस आन्दोलन ने फूकन के प्रयासों के काफी समय पश्चात् आकार ग्रहण किया। यहाँ तक कि इस सम्बन्ध में मिल्स साहब की सरकार से की गयी सिफ़ारिशें भी बेकार गयीं। फूकन के बैप्टिस्ट सहयोगियों ने तब आन्दोलन की बागडोर सम्हाली। वास्तव में, असम के तत्कालीन कमिश्नर कर्नल हैनरी होपकिन्स ने अपने 11 दिसम्बर, 1873 को जन-शिक्षा के निदेशक को लिखे पत्र में कहा कि असमी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के आन्दोलन के लिए हम मुख्य रूप से शिवसागर के मिशनरियों के आभारी हैं। यह वास्तव में भाषा का बनाना ही था। हमें एक अन्य अनुस्मारक 'ए मेमोरियल ऑफ़ द असमीज़ कम्युनिटी ऑफ़ नौगोंग' से भी प्राप्त होता है—जोकि उपर्युक्त 'समाज' के अध्यक्ष के रूप में माइल्स ब्रोन्सन सहित अन्य दो सौ पन्द्रह व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित था, इसके साथ 'ए फ्यू रिमार्क्स ऑन द असमीज़ लैंग्वेज एण्ड वर्नाकुलर एजुकेशन ऑफ़ असम' की एक प्रति भी संलग्न थी। इसके साथ प्रकाशनों की सूची भी थी। नाटक-व्याकरण एवं शब्दकोश के शीर्षकों में

वर्गीकृत यह सूची असमी के पक्ष में नये तर्कों को जोड़ती थी। अनुमानतः अन्य स्थानों से भी इसी प्रकार के अनुस्मारक प्राप्त हुए। यह बात उल्लेखनीय है कि ढेकियाल फूकन की रचनाएँ अब भी मृत सीज़र की आत्मा के समान काम कर रही थीं।

लेफ्टिनेंट गवर्नर ने इस बात को अत्यावश्यक समझा कि "असमी भाषा को असम घाटी की सभी अदालतों और स्कूलों में लागू कर देना चाहिए।" यह आदेश कुछ निश्चित सीमाओं के साथ सभी प्राथमिक, निम्न माध्यमिक, माध्यमिक विद्यालयों में लागू हो गये। असम के कमिश्नर को 9 अप्रैल 1873 को असम की घाटी के पाँच जिलों में सरकार के इन आदेशों को कार्यान्वित करने का निदेश दिया गया। इस प्रकार असम के शिक्षा और न्याय के क्षेत्रों में, जिसके लिए आनन्दराम फूकन ने जी-जान से कार्य किया, स्थानीय भाषा असमिया के प्रयोग का प्रवर्तन हुआ।

आनंदराम ढेकियाल फूकन के शिक्षा सम्बन्धी विचार बिलकुल वही थे जो बंगाल के राजा राममोहन राय के। उनको संक्षेप में यों रखा जा सकता है—एक उदार और ज्ञान सम्पन्न शिक्षा-प्रणाली जिसमें गणित, प्राकृतिक-दर्शन (प्राणि-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान आदि) रसायन-शास्त्र, शरीर रचना-विज्ञान एवं अन्य उपयोगी विज्ञान आदि विषयों का शिक्षण-प्रशिक्षण हो। यद्यपि वे संस्कृत अध्ययन को कभी भी पिछड़ा रखना नहीं चाहते थे फिर भी वे आधुनिकता के लिए उपर्युक्त विषयों का अध्ययन अनिवार्य समझते थे। उनकी आँखें निरन्तर बंगाल और हिन्दुस्तान में आधुनिक शिक्षा की प्रगति पर लगी रहती थीं। असम इन्हीं क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ था। उसे तो अभी माध्यम के लिए ही लड़ना पड़ रहा था। इसी लिए आनंदराम फूकन ने इस बाधा को दूर करने के लिए लड़ाई लड़ी।

शिक्षा और प्रगति का वह उदार समाज जिसकी परिकल्पना आनन्दराम फूकन ने की, धीरे-धीरे साकार हुआ। गुणाभिराम बरुआ ने, जिनकी शिक्षा और लालन-पालन पर फूकन ने बहुत ध्यान दिया, कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलिज में दो साल अध्ययन किया और बाद में अतिरिक्त एसिस्टेंट कमिश्नर के रूप में तीस वर्ष तक कार्य किया। वे बाद में महान् नेतृत्व एवं ज्ञान के प्रकाश से सम्पन्न व्यक्ति के रूप में समाज और साहित्य के क्षेत्र में प्रख्यात हुए। गुणाभिराम विधवा-विवाह के समर्थक और ब्राह्म विचारोंवाले व्यक्ति थे। आनन्दराम फूकन के पुत्र राधिकाराम ने ब्रिटिश विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। उनकी पुत्री पद्मावती उन दिनों तब एक लेखिका बनने के लिए पर्याप्त रूप से शिक्षित हुई जबकि लोग अपनी पुत्रियों को शिक्षा देने के बारे में सोचा भी नहीं करते थे।

आनंदराम ढेकियाल फूकन आसामी लोगों के जीवन के संघर्षपूर्ण चरण से सम्बन्ध रखते थे। यह वह काल था जब ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा असम को

ब्रिटिश शासन में मिला लेने के दस वर्ष बाद असमियों की मातृभाषा को वहाँ के विद्यालयों और न्यायालयों से बहिष्कृत कर दिया गया था। उसके स्थान पर बाङ्ला को प्रतिष्ठित कर दिया गया। यह सब बाङ्ला और असमी को एक ही भाषा समझने की भ्रान्ति के कारण हुआ। परिणामतः किसी लड़के या लड़की ने बाङ्ला भाषा नहीं सीखी और किसी भी आदमी या औरत ने अदालती कार्यवाही को नहीं समझा जोकि बाङ्ला भाषा में होती थी। उस समय के किसी अभिजात एवं सामान्य वर्गीय व्यक्ति ने इसके खिलाफ़ आवाज भी नहीं उठायी।

असम के लोगों का धर्म परिवर्तन करनेवाले कुछ मिशनरियों ने इस भयंकर नियतिवादी परिस्थिति को समझा जैसा कि असमी, बाङ्ला और अंग्रेजी भाषाओं का गम्भीर ज्ञान रखनेवाले श्री आनंदराम फूकन ने। वे असमी भाषा को उसके उचित स्थान पर अधिष्ठित करने का आन्दोलन खड़ा करने के लिए एकजुट हो गये। किन्तु इस आन्दोलन की किस्मत में फूकन की मृत्यु के चौदह वर्ष पश्चात् तक सफल न होना बदा था। इतने विलम्ब से आन्दोलनकारियों को प्राप्त हुई इस असफलता के लिए उनको आनंदराम फूकन के बहुश्रुत और ज्ञानपूर्ण लेखन का आभारी होना चाहिए जिसने असमिया भाषा की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए उस समय अत्यन्त आवश्यक तर्क-शक्ति एवं तथ्यों का नियोजन किया। इस प्रकार आनंदराम फूकन ने बच्चों की मातृभाषा में वास्तविक शिक्षा के विकास की सम्भावना के लिए तथा सभी लोगों द्वारा समझी जानेवाली स्थानीय भाषा की न्याय-व्यवस्था के लिए मार्ग प्रशस्त किया। अन्ततोगत्वा आनंदराम फूकन असमी साहित्य के महान् निर्माता (स्रष्टा नहीं) बने और साहित्य-स्रष्टा के रूप में उन्होंने हमारे अधिकार नहीं छोड़े किन्तु असमी भाषा को सरकार और सामान्य जनता के लिए स्वीकार्य बनाया और उसे वहाँ की राजभाषा का गौरव प्रदान कराया। साथ ही, उन्होंने साहित्य के लिए वह जमीन तैयार की जिसमें से कि नयी फ़सल उगायी जा सके। माइल्स ब्रोन्सन, नैथन ब्राउन, आनंदराम फूकन, हेमचन्द्र बरुआ, आनंदराम बरुआ, गुणाभिराम बरुआ सहित 'ओरुनुदोइ' (अरुणोदय) के अन्य लेखकों ने व्याकरणों, शब्दकोशों एवं विभिन्न प्रकार के अपने साहित्यिक कार्य-कलापों से आधुनिक असमिया भाषा को रूप दिया, सन्तुलन एवं सौन्दर्य दिया, लचीलापन और शक्ति दी जिससे कि वह आज की गहन-सूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्त एवं अभिव्यंजित कर सके। शीघ्र ही, गद्य और पद्य के आधुनिक साहित्यिक रूपों ने इस नवीन भाषा में अपना स्थान जमा लिया और इसमें अंग्रेजी जैसे समृद्ध साहित्य के गुणों का अवग्रहण होने लगा। अन्ततः जब 'असमिया भाषा उन्नति साधिनी सभा' की स्थापना कलकत्ता में हुई और मासिक पत्रिका 'जोनाकि' (जुगनू) का प्रकाशन 1888-89 में आरम्भ हुआ तब तक एक पूर्णरूप से विकसित

आधुनिक असमी साहित्य का अपनी ओजस्विता और जीवनी शक्ति के साथ उदय हुआ।

इस प्रकार आनंदराम ढेकियाल फूकन एक युग-प्रवर्तक थे—महान् युग प्रवर्तक। आधुनिक असम की महत्तम साहित्यिक विभूति लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ ने आनंदराम को अपनी काव्यात्मक श्रद्धांजलि इन दो पंक्तियों में की है, जिसका भावार्थ निम्न प्रकार से है—

> "अभी हाल ही तो तुम्हारे पास तुम्हारा उनतीस वर्षीय युवक ढेकियाल फूकन था। जो लक्ष्य उसने असम के लिए प्राप्त किया और जो महान् कीर्ति अर्जित की, उसे ध्यान में रखो।"

□□